

श्रीधनंजयविरचितं  
दशरूपकम् ।



मूल्यं १२ आणकाः ।

# विक्रीस तयार.

## निर्णयमागर छापखान्यांतील पुस्तकें. संस्कृत.

किं. ट. ख.		किं. ट. ख.	
अध्यात्मरामायण (रे. पु.) ॥॥ ८८॥		ग्रंथ)-वाग्भटकृत, अ-	
अनुभूतिप्रकाश-विद्यार-		रुणदत्तकृत सर्वांगसुं-	
ण्यस्वामिकृत ... २१ ८८		दरा टीकेसहित ... ८ ॥३	
अभिज्ञानशाकुंतल ना-		अष्टाध्यायीसूत्रपाठ-पा-	
टक-कालिदासकृत, -		णिनिकृत ... १० ॥१॥	
राघवभट्टकृत अर्थबो-		आदित्यहृदय व सूर्यक-	
तनिका टीकेसहित ११ ८८॥		वच ... ८८॥ ८८॥	
,, (इंग्रजी टीपांस-		आपस्तंबीय देवे ... ८८॥ ८८॥	
हित) ... २ ८८॥		आशौचनिर्णय-अर्थबककृत ८८॥ ८८॥	
अभिधानसंग्रह-प्रथम		ईसवनीतिकथा प्रथम	
भाग. यांत अमरसिं-		भाग (कथा १-६०) ॥२ ८८॥	
हकृत नामलिङ्गानु-		,, द्वितीय भाग	
शासन, पुरुषोत्तमदे-		(कथा ६१-१२०) ॥२ ८८॥	
वकृत त्रिकांडशेष,		उदासीनसाधुस्तोत्र-देव-	
हारावली, एकाक्षर-		तीर्थकृत, ब्रह्मानंद-	
कोश, व द्विरूपकोश		कृत टीकेसहित ... १० ८८	
इतके कोश आले आ-		ऋग्वेदी नित्यविधि ... १० ८८	
हेत ... १ ८८		ऋग्वेदी देवे ... ८८॥ ८८॥	
अमरकोशमूळ-शब्द-		ऋणमोचनमंगलस्तोत्र... ८८ ८८॥	
कोशसहित ... १२ ८८		ऋतुसंहार काव्य-कालि-	
अमरकोश सटीक-शब्द-		दासकृत, मणिराम-	
कोशसहित... १११ ८८॥		कृत टीकेसहित ... १० ८८	
अभिनवकादंबरी काव्य-		,, इंग्रजी टीपांसहित	
धुंदिराजकृत ... ८३ ८८॥		आणि शृङ्गारतिलक-	
अमरकोश-अमरसिंह-		काव्य कालिदासकृत ॥२ ८८	
कृत, भानुजी दीक्षि-		कथासरित्सागर-सोमदे-	
तकृत व्याख्यासुधा		वभट्टकृत ... ६ ॥३	
किंवा रामाश्रमी टीके-		कादंबरी-बाणभट्टकृत,	
सहित ... ५ ११८		भानुचंद्र व सिद्धचंद्र	
अवधूतगीता (साधी.) ८८॥ ८८॥		यांच्या टीकांसहित ... ५ ॥२	
,, (रे. पु.) १८ ८८॥		किरातार्जुनीय काव्य-	
अष्टांगहृदय (वैद्यक		भारविकृत, मल्लिना-	

किं. ट. ख.		किं. ट. ख.
थकृत घण्टापथ टीके-		यांसहित ... .. १२ ८८
सहित ... .. २ ११		तुलसीमाहात्म्य ... ८॥ ८॥
कुमारसंभव काव्य-का-		त्रिकालसंध्या हिरण्यके-
लिदासकृत, मल्लिना-		शीया (आपस्तंबी) ८॥ ८॥
थकृत (१-८ सर्ग) व		॥ ऋग्वेदीया ८॥ ८॥
सीतारामकृत (८-१७		दत्तात्रेयसहस्रनामावलि ८८ ८॥
सर्ग) संजीविनी टीके-		दत्तात्रेयस्तोत्र ... .. ८१ ८॥
सहित ... .. २ ११		दमयंतीकथा (नलचंपू)-
कुवलयानंदकारिका-आ-		त्रिविक्रमभट्टकृत, च-
शाधरकृत, स्वकृत अ-		ण्डपालकृत विषमप-
लंकारदीपिका टीकेस-		दप्रकाश टीकेसहित... २ ११
हित ... .. १॥ ८८		दशकुमारचरित-दण्डि-
कृष्णसहस्रनाम... .. ८८ ८॥		कृत, पूर्वपीठिका, उ-
गंगालहरीमूल... .. ८॥ ८॥		त्तरपीठिका, कवीन्द्र-
गणपतिस्तोत्र ... .. ८१ ८॥		सरस्वतीकृत पदच-
गणेशाष्टक ... .. ८१ ८॥		न्द्रिका टीका, शिवरा-
गणेशगीता (साधी) ८८ ८॥		मकृत भूपणा टीका,
॥ ( रे. पु.)... .. ११ ८॥		लघुदीपिका टीका (द-
गणेशसहस्रनामावलि ८८ ८॥		शकुमारचरितावर) व
गोपालसहस्रनाम, गो-		पदचन्द्रिका टीका (पू-
पालकवच व गोपाल-		र्वपीठिकेवर) यांस-
स्तवराज यांसहित ८८ ८॥		हित ... .. १॥ ८८
॥ (रेशमी पुढा) ११ ८॥		दुर्गास्तोत्र-नारायणभट्ट
चतुःश्लोकी भागवत ८१ ८॥		पर्वणीकरकृत ... ८८ ८॥
जैनस्तोत्रसंग्रह (यांत भ-		देवीसहस्रनामावलि ८८ ८॥
क्तामरस्तोत्र, कल्याण-		द्वादशस्तोत्र-भगवत्पादा-
मंदिरस्तोत्र, एकीभा-		चार्यकृत ... .. ८८ ८॥
वस्तोत्र, विषापहार-		धातुरूपावलि... .. ८८ ८॥
स्तोत्र व जिनचतुर्वि-		श्रीहर्षविरचित नैषधीय-
शतिका इतकीं स्तोत्रें		चरित-नैषधीयप्रका-
आहेत.) ... .. ११ ८॥		शाख्य (नारायणी)
ज्योतिर्लिङ्गस्तोत्र व शि-		टीकेसहित ... .. ६ ११
वमानसपूजा... .. ८॥ ८॥		नर्मदाष्टकस्तोत्र-शंकरा-
तर्ककौमुदी-लौगाक्षिभा-		चार्यकृत ... .. ८१ ८॥
स्करकृत ... .. ८८ ८॥		नारदभक्तिसूत्रें ... ८८ ८॥
तर्कसंग्रह-अलंभकृत,		नीतिशतक-भर्तृहरिकृत,
स्वकृत दीपिका टीका,		कृष्णशास्त्री महाबल-
व इंग्रजी भाषांतर		कृत टीकेसहित ... ११ ८॥

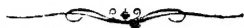
किं. ट. ख.		किं. ट. ख.
नीति-शृङ्गार-वैराग्य-श- तकं-भट्टहरिकृत, कृ- ष्णशास्त्री महाबल- कृत टीकेसहित ... ॥३॥ ४-		॥ बुकसाईज (म. अ.) ४३ ॥॥
पंचरत्नी गीता (यांत भ- गवद्गीता, विष्णुसह- स्रनाम, भीष्मस्तव- राज, अनुस्मृति व गजेंद्रमोक्ष इतकीं प्र- करणे आहेत.) (रे. पु.) (स्थूलाक्षर) ... १ ४३		॥ शंकरानंदसरस्वती- कृत गीतातात्पर्यबो- धिनी टीकेसहित ... ५ ॥३
॥ ॥ (मध्यमाक्षर) ॥३ ४-		॥ भट्टिकाव्य-भट्टिकृत, ज- यमङ्गलकृत जयमङ्ग- ला टीकेसहित ... ३ ॥१
॥ ॥ (सूक्ष्माक्षर) ॥१॥ ४-		॥ भट्टिकाव्याचा १४ वा व १५ वा सर्ग इंग्रजी टीपांसहित. प्रत्येक स- गांस ... ॥१ ॥॥
॥ (साधी) ... ॥१ ४-		॥ पंडितराज जगन्नाथ वि- रचित भास्मिनीविला- स काव्य अच्युतराव मोडककृत प्रणयप्र- काश टीकेसहित. ... १ ४-
पंचायतन देवाची पृथक् पृथक् अष्टोत्तरशत नामावलि. ... ४-	॥॥ ४॥	॥ मनुस्मृति-कुल्लूकभट्टकृत मन्वर्थमुक्तावलि टीके- सहित ... २ ॥१
पांडवगीता ... ४-	॥॥ ४॥	॥ महालक्ष्म्यष्टक ... ४॥ ४॥
पार्वतीपरिणय नाटक- बाणकृत ... ॥१ ४॥		॥ महावीरचरितनाटक-भ- वभूतिकृत, वीरराघव- कृत टीकेसहित ... १॥ ४३
प्रश्नोत्तरपयोनिधि-बल- रामदासमुनिकृत ... ॥१ ४॥		॥ मालतीमाधव नाटक-भ- वभूतिकृत, त्रिपुरारि- कृत टीका, नान्यदेव- कृत टीका व जगद्धर- कृत टीका यांसहित २ ४३॥
प्रसन्नराघव नाटक-जय- देवकृत ... ॥३॥ ४-		॥ मालविकाग्निमित्र ना- टक-कालिदासकृत, का- ट्यवेमकृत टीकेसहित ॥१ ४-
प्रातःस्मरण ... ४-	॥॥ ४॥	॥ मालविकाग्निमित्र ना- टक-इंग्रजी टीपांस- हित ... ॥३॥ ४-
पुरुषोत्तम सहस्रनाम ... ४-	॥॥ ४॥	॥ विशाखदत्तविरचित सु- दाराक्षस नाटक, धुं- डिराजकृत टीकेसहित १॥३॥ ॥१
बृहत्स्तोत्ररत्नाकरः (सचित्र) कापडी ... ॥१ ४-		॥ मेघदूत काव्य-कालिदा-
॥ (कागदी) ॥३ ४-		
ब्रह्मनामावलि-शंकराचा- र्यकृत ... ॥१ ४॥		
श्रीमद्भागवत मूळ (रे- शमी गुटका) ... १॥३ ४३॥		
भगवद्गीता (रेशमी पुढा स्थूलाक्षर) ... ॥३ ४३॥		
॥ (मध्यमाक्षर रे. पु.) ॥३ ४॥		
॥ ॥ (सूक्ष्माक्षर) ॥१ ४॥		
साधी (मध्यमाक्षर) ... ४३ ४॥		



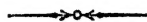
THE  
DAS'ARÛPAKA

OF  
DHANANJAYA

WITH  
The Commentary of Dhanika.



EDITED BY  
KÂSHÎNÂTH PÂNDURANG PARAB.



PRINTED AND PUBLISHED

BY

TUKÂRÂM JÂVAJÎ,

PROPRIETOR OF JÂVAJÎ DÂDÂJÎ'S "NIRNAYA-SÂGAR" PRESS,

**Bombay:**

---

1897.

---

*Price 12 Annas.*

(Registered according to act XXV of 1867.)

(All rights reserved by the publisher.)

॥ श्रीः ॥

श्रीधनंजयविरचितं

## दशरूपकम् ।

धनिककृतयावलोकाख्यया व्याख्यया समेतम् ।

काशीनाथ पाण्डुरङ्ग परब

इत्यनेन संस्कृतम् ।

तच्च

शाके १८१९ वत्सरे

मुम्बय्यां

निर्णयसागरयन्त्रालयाधिपतिना स्वकीये मुद्रायन्त्रे

मुद्रापयित्वा प्राकाश्यं नीतम् ।

मूल्यं १२ आणकाः ।



# दशरूपकविषयानुक्रमणिका

	प्रकाशे ।	श्लोकः ।	पृष्ठे ।
प्रथमः प्रकाशः ।			
मङ्गलाचरणम्.....	१	१-२	१
श्रोतृप्रवृत्तिनिमित्तम् .....	१	३	१
ग्रन्थकर्तृप्रवृत्तिनिमित्तम् .....	१	४	१
पौनरुक्त्यपरिहारः .....	१	५	२
दशरूपकफलम् .....	१	६	२
नाट्यलक्षणम्.....	१	७	२
रूपलक्षणम् .....	१	७	२
रूपकलक्षणम् .....	१	७	२
भेदसंख्यानियमनम् .....	१	७	२
दशभेदनामकथनम् .....	१	८	३
नृत्यलक्षणम् .....	१	९	३
नृत्तलक्षणम् .....	१	९	३
नृत्यनृत्तयोर्द्वैविध्यम् .....	१	१०	३
रूपाणां भेदकनिरूपणम् .....	१	११	४
वस्तुनो द्वैविध्यम् .....	१	११	४
आधिकारिकनिरूपणम् .....	१	१२	४
प्रासङ्गिकनिरूपणम् .....	१	१३	४
प्रासङ्गिकस्य द्वैविध्यम् .....	१	१३	४
पताकास्थानकम् .....	१	१४	४
आधिकारिकपताकाप्रकरीणां त्रिविधत्वम्..	१	१५	५
इतिवृत्तफलम्.....	१	१६	५
इतिवृत्तसाधनम् .....	१	१७	५
अवान्तरबीजसंज्ञान्तरम् .....	१	१७	६
प्रयोजनसिद्धिहेतवः .....	१	१८	६

			प्रकाशे ।	श्लोकः ।	पृष्ठे ।
अवस्थापञ्चकम्	....	...	१	१९	६
आरम्भलक्षणम्	....	....	१	२०	६
प्रयत्नलक्षणम्	....	....	१	२०	६
प्राप्त्याशालक्षणम्	....	....	१	२१	७
नियतासिलक्षणम्	....	....	१	२१	७
फलयोगलक्षणम्	....	....	१	२२	७
संधिलक्षणम्	....	....	१	२३	७
संधिभेदनामानि	....	....	१	२४	७
मुखलक्षणम्	....	....	१	२४	८
मुखभेदकथनम्	....	....	१	२५	८
मुखभेदनामानि	....	....	१	२५-२६	८
उपक्षेपलक्षणम्	....	....	१	२७	८
परिकरलक्षणम्	....	....	१	२७	८
परिन्यासलक्षणम्	....	....	१	२७	८
विलोभनलक्षणम्	....	....	१	२७	९
युक्तिलक्षणम्	....	....	१	२८	९
प्राप्तिलक्षणम्	....	....	१	२८	९
समाधानलक्षणम्	....	....	१	२८	१०
विधानलक्षणम्	....	....	१	२८	११
परिभावनलक्षणम्	....	....	१	२९	११
उद्भेदलक्षणम्	....	....	१	२९	१२
करणलक्षणम्	....	....	१	२९	१२
भेदलक्षणम्	....	....	१	२९	१३
प्रतिमुखलक्षणम्	....	....	१	३०	१३
प्रतिमुखाङ्गसंख्याकथनम्	....	....	१	३०	१३
प्रतिमुखाङ्गनामानि	....	...	१	३१	१४
विलासलक्षणम्	....	....	१	३२	१४
परिसर्पलक्षणम्	....	....	१	३२-३३	१४

	प्रकाशे ।	श्लोकः ।	पृष्ठे ।
विधूतलक्षणम्.....	१	३३	१५
शमलक्षणम् .....	१	३३	१५
नर्मलक्षणम् .....	१	३३	१६
नर्मद्युतिलक्षणम् .....	१	३३	१६
प्रगमनलक्षणम् .....	१	३४	१६
निरोधलक्षणम् .....	१	३४	१७
पर्युपासनलक्षणम् .....	१	३४	१७
पुष्पलक्षणम् .....	१	३४	१७
उपन्यासलक्षणम् .....	१	३५	१८
वज्रलक्षणम् .....	१	३५	१८
गर्भसंघिलक्षणम् .....	१	३५	१८
गर्भसंघयङ्गनामानि .....	१	३६	१९
अभूताहरणलक्षणम् .....	१	३७	१९
मार्गलक्षणम् .....	१	३८	२०
रूपलक्षणम् .....	१	३९	२०
उदाहरणलक्षणम् .....	१	३९	२०
क्रमलक्षणम् .....	१	३९	२१
संग्रहलक्षणम् .....	१	४०	२१
अनुमानलक्षणम् .....	१	४०	२२
अधिबललक्षणम् .....	१	४०	२२
तोटकलक्षणम् .....	१	४०	२२
तोटकलक्षणान्तरे .....	१	४१	२३
उद्वेगलक्षणम् .....	१	४२	२३
संभ्रमलक्षणम् .....	१	४२	२४
आक्षेपलक्षणम् .....	१	४२	२४
अवमर्शलक्षणम् .....	१	४३	२५
अवमर्शाङ्गनामानि .....	१	४४	२५

			प्रकाशे ।	श्लोकः ।	पृष्ठे ।
अपवादलक्षणम्	....	....	१	४५	२५
संफेदलक्षणम्	....	....	१	४५	२६
विद्रवलक्षणम्	....	....	१	४६	२६
द्रवलक्षणम्	....	....	१	४६	२७
शक्तिलक्षणम्	....	....	१	४६	२८
द्युतिलक्षणम्	....	....	१	४६	२८
प्रसङ्गलक्षणम्	....	....	१	४६	२८
छलनलक्षणम्	....	....	१	४६	२९
व्यवसायलक्षणम्	....	....	१	४७	२९
विरोधनलक्षणम्	....	....	१	४७	३०
प्ररोचनालक्षणम्	....	....	१	४७	३१
विचलनलक्षणम्	....	....	१	४८	३१
आदानलक्षणम्	....	....	१	४८	३२
निर्वहणसंधिलक्षणम्	....	....	१	४८	३२
निर्वहणाङ्गनामानि	....	....	१	४९-५०	३३
संधिलक्षणम्	....	....	१	५१	३३
विवोधलक्षणम्	....	....	१	५१	३३
अथनलक्षणम्	....	....	१	५१	३५
निर्णयलक्षणम्	....	....	१	५१	३५
परिभाषणलक्षणम्	....	....	१	५२	३५
प्रसादलक्षणम्	....	....	१	५२	३५
आनन्दलक्षणम्	....	....	१	५२	३५
समयलक्षणम्	....	....	१	५२	३६
कृतिलक्षणम्	....	....	१	५३	३६
भाषणलक्षणम्	....	....	१	५३	३६
पूर्वभावलक्षणम्	....	....	१	५३	३७
उपगूहनलक्षणम्	....	....	१	५३	३७
काव्यसंहारलक्षणम्	....	....	१	५४	३७



			प्रकाशः ।	श्लोकः ।	पृष्ठे ।
प्रशस्तिलक्षणम्	....	....	१	६४	३८
अङ्गप्रयोजनभेदकथनम्	....	....	१	६४	३८
षट्प्रयोजननामानि	....	....	१	६५	३८
पुनर्वस्तुविभागकथनम्	....	....	१	६६	३८
सूच्यलक्षणम्	....	....	१	६७	३८
दृश्यश्रव्यलक्षणम्	....	....	१	६७	३८
सूच्यप्रतिपादनप्रकारकथनम्	....	....	१	६८	३८
विष्कम्भलक्षणम्	....	....	१	६९	३८
विष्कम्भद्वैविध्यम्	....	....	१	७०	३९
प्रवेशकलक्षणम्	....	....	१	७०	३९
चूलिकालक्षणम्	....	....	१	७१	३९
अङ्कास्यलक्षणम्	....	....	१	७२	३९
अङ्कावतारलक्षणम्	....	....	१	७२	४०
पुनर्वस्तुत्रैविध्यकथनम्	....	....	१	७३	४०
सर्वश्राव्यलक्षणम्	....	....	१	७३	४०
स्वगतलक्षणम्	....	....	१	७४	४०
नियतश्राव्यभेदकथनम्	....	....	१	७५	४१
जनान्तिकलक्षणम्	....	....	१	७६	४१
अपवारितलक्षणम्	....	....	१	७६	४१
आकाशभाषितलक्षणम्	....	....	१	७७	४१
वस्तुभेदोपसंहारकथनम्	....	....	१	७८	४१
द्वितीयः प्रकाशः ।					
नायकभेदकथनम्	....	....	२	१-२	४३
विनीतः	....	....	२	२	४३
मधुरः	....	....	२	२	४३
त्यागी	....	....	२	२	४३
दक्षः	....	....	२	२	४३
प्रियंवदः	....	....	२	२	४३

	प्रकाशे ।	श्लोकः ।	पृष्ठे ।
रक्तलोकः ....	२	२	४४
वाङ्मयी(गमी) ....	२	२	४४
रूढवंशः ....	२	२	४४
स्थिरः ....	२	२	४४
युवा ....	२	२	४४
नेतृविशेषकथनम् ....	२	३	४५
ललितः ....	२	३	४५
शान्तः ....	२	४	४५
धीरोदात्तः ....	२	५	४६
धीरोद्धतः ....	२	६	४७
शृङ्गारनायकभेदाः ....	२	६	४८
दक्षिणः ....	२	७	४८
शठः ....	२	७	४८
धृष्टः ....	२	७	४९
अनुकूलः ....	२	७	४९
सहायाः ....	२	८	५०
प्रतिनायकः ....	२	९	५०
सात्त्विका नायकगुणाः ....	२	१०	५०
नीचे घृणा ....	२	११	५०
गुणाधिके स्पर्धा ....	२	११	५१
शौर्यशोभा ....	२	११	५१
दक्षशोभा ....	२	११	५१
विलासः ....	२	११	५१
माधुर्यम् ....	२	१२	५१
गाम्भीर्यम् ....	२	१२	५२
स्थैर्यम् ....	२	१३	५२
तेजः ....	२	१३	५२
ललितम् ....	२	१४	५२

			प्रकाशे ।	श्लोकः ।	पृष्ठे ।
औदार्यम् ....	....	....	२	१४	५२
नायिकाभेदाः ....	....	....	२	१५	५३
स्वीयालक्षणभेदाः ....	....	....	२	१५	५३
शीलवती ....	....	....	२	१५	५३
आर्जवादियोगिनी ....	....	....	२	१५	५३
लज्जावती ....	....	....	२	१५	५३
मुग्धा ....	....	....	२	१६	५४
वयोमुग्धा ....	....	....	२	१६	५४
काममुग्धा ....	....	....	२	१६	५४
रतवामा ....	....	....	२	१६	५४
कोपमृदुः ....	....	....	२	१६	५४
मध्या ....	....	....	२	१६	५५
यौवनवती ....	....	....	२	१६	५५
कामवती ....	....	....	२	१६	५५
मध्यासंभोगः ....	....	....	२	१६	५५
मध्यामानवृत्तिः ....	....	....	२	१७	५५
धीरामध्यामानवृत्तिः ....	....	....	२	१७	५५
धीराधीरामध्यामानवृत्तिः ....	....	....	२	१७	५५
अधीरामध्यामानवृत्तिः ....	....	....	२	१७	५५
प्रगल्भा ....	....	....	२	१८	५६
गाढयौवना ....	....	....	२	१८	५६
भावप्रगल्भा ....	....	....	२	१८	५६
रतप्रगल्भा ....	....	....	२	१८	५७
प्रगल्भाकोपचेष्टा ....	....	....	२	१९	५७
सावहित्थादरा ....	....	....	२	१९	५७
रतावुद्रामीना ....	....	....	२	१९	५७
अधीरप्रगल्भा ....	....	....	२	१९	५७
धीराधीरप्रगल्भा ....	....	....	२	१९	५८

	प्रकाशे ।	श्लोकः ।	पृष्ठे ।
मध्याप्रगल्भयोर्द्वादशविधत्वम् ....	२	२०	१८
परकीया ....	२	२०	१८
साधारणस्त्री ....	२	२१	१९
साधारणस्त्रीव्यवहारः ....	२	२२	१९
अस्या निबन्धनियमः ....	२	२३	१९
नायिकाभेदान्तराणि ....	२	२३	१९
स्वाधीनपतिका ....	२	२४	२०
वासकसज्जा ....	२	२४	२०
विरहोत्कण्ठिता ....	२	२५	२०
खण्डिता ....	२	२५	२१
कलहान्तरिता ....	२	२६	२१
विप्रलब्धा ....	२	२६	२१
प्रोषितभर्तृका ....	२	२७	२१
अभिसारिका ....	२	२७	२१
खण्डितादीनां चिन्तादियुक्तत्वम् ....	२	२८	२२
स्वाधीनपतिका-वासकसज्जयोर्व्रीडादियुक्तत्वम्	२	२८	२२
नायिकासहायिन्यः ....	२	२९	२२
योषिदलंकाराः ....	२	३०	२३
शरीरजालंकाराः ....	२	३०	२३
सप्त भावा अयन्नजाः ....	२	३१	२३
दश भावाः स्वभावजाः ....	२	३२	२४
हावः ....	२	३४	२४
हेला ....	२	३४	२५
शोभा ....	२	३५	२५
कान्तिः ....	२	३५	२५
माधुर्यम् ....	२	३५	२५
दीप्तिः ....	२	३५	२५
प्रागल्भ्यम् ....	२	३५	२५

				प्रकाशे ।	श्लोकः ।	पृष्ठे ।
औदार्यम्	....	....	....	२	३६	६६
धैर्यम्	....	....	....	२	३७	६७
लीला	....	....	....	२	३७	६७
विलासः	....	....	....	२	३८	६७
विच्छित्तिः	....	....	....	२	३८	६८
विभ्रमः	....	....	....	२	३९	६८
किलकिञ्चितम्	....	....	....	२	३९	६८
मोहयितम्	....	....	....	२	४०	६८
कुट्टमितम्	....	....	....	२	४०	६९
विब्वोकः	....	....	....	२	४१	६९
ललितम्	....	....	....	२	४१	६९
विहृतम्	....	....	....	२	४२	७०
नायकसहायाः	....	....	....	२	४२	७०
सहायविभागः	....	....	....	२	४३	७०
धर्मसहायाः	....	....	....	२	४३	७०
दण्डसहायाः	....	....	....	२	४४	७०
अन्तःपुरसहायाः	....	....	....	२	४४	७१
नायकादीनां विशेषः	....	....	....	२	४५	७१
नायकव्यापारः	....	....	....	२	४७	७१
नर्माष्टादशभेदाः	....	....	....	२	४८-५०	७१-७२
वचोहास्यनर्म	....	....	....	२	५०	७२
वेपनर्म	....	....	....	२	५०	७२
क्रियानर्म	....	....	....	२	५०	७२
शृङ्गारवदात्मोपक्षेपनर्म	....	....	....	२	५०	७२
संभोगनर्म	....	....	....	२	५०	७२
माननर्म	....	....	....	२	५०	७२-७३
भयनर्म	....	....	....	२	५१	७३
नर्मस्फुल्लः	....	....	....	२	५१	७३

	प्रकाशः ।	श्लोकः ।	पृष्ठे ।
नर्मस्फोटः ....	२	५१	७३
नर्मगर्भः ....	२	५२	७३
सात्त्वती ....	२	५३	७४
सात्त्वत्यङ्गानि ....	२	५३	७४
संलापकः ....	२	५४	७४
उत्थापकः ....	२	५४	७४
साङ्ख्यः ....	२	५५	७४
परिवर्तकः ....	२	५५	७५
आरभटीलक्षणम् ....	२	५६	७५
आरभट्यङ्गानि ....	२	५६	७५
संक्षिप्तिका ....	२	५७	७५
स्फोटः ....	२	५८	७५
वस्तुत्थापनम् ....	२	५९	७६
अवपातः ....	२	५९	७६
वृत्त्युपसंहारः ....	२	६०-६१	७६
वृत्तिनियमः ....	२	६२-६४	७७
संस्कृतादिपाठ्यं प्रति विशेषः ....	२	६४	७७
आमन्त्रणप्रकारः ....	२	६७	७७
<b>तृतीयः प्रकाशः ।</b>			
नाटकस्यैव पूर्वोक्तौ हेतुः ....	३	१	७९
नटस्य पूर्वकर्तव्यता ....	३	२	७९
सूचननियमः ....	३	३	७९
रङ्गं प्रसाद्य भारतीवृत्त्याश्रयणम् ....	३	४	८०
भारतीभेदनामानि ....	३	५	८०
प्ररोचना ....	३	६	८०
वीथ्यङ्गानि ....	३	७	८१
कथोद्धातः ....	३	९	८१
प्रवृत्तकम् ....	३	१०	८१

	प्रकाशे ।	श्लोकः ।	पृष्ठे ।
प्रयोगातिशयः ....	३	११	८२
वीथ्यङ्गनामानि ....	३	१२	८२
उद्घात्यलक्षणभेदाः ....	३	१३	८२
अवलगितम् ....	३	१४	८३
प्रपञ्चः ....	३	१५	८३
त्रिगतम् ....	३	१६	८३
छलनम् ....	३	१७	८४
वाक्येली ....	३	१७	८४
अधिबलम् ....	३	१८	८४
गण्डः ....	३	१८	८५
अवस्यन्दितम् ....	३	१९	८५
नालिका ....	३	१९	८५
असत्प्रलापः ....	३	२०	८६
व्याहारः ....	३	२०	८६
मृदवम् ....	३	२१	८७
प्रस्तावनोत्तरं सूत्रधारव्यापारः ....	३	२२	८७
नायकविशेषे विधेयविशेषः ....	३	२३	८७
नायकरसानुचितं त्याज्यम् ....	३	२४	८८
संधिविभागकरणम् ....	३	२५	८८
अङ्गसंख्यान्यासौ ....	३	२६	८८
विष्कम्भकादिकरणम् ....	३	२८	८८
विष्कम्भकनियमाः ....	३	२९	८८
अङ्करचनानियमाः ....	३	३०	८८
अङ्गलक्षणम् ....	३	३०	८९
अङ्गिपरिपोषणप्रकारः ....	३	३१	८९
वस्तुविच्छेदनिषेधः ....	३	३२	८९
रसतिरोधाननिषेधः ....	३	३३	८९
मुख्यतया वीरशृङ्गारान्यतररसाश्रयणम्	३	३३	८९

			प्रकाशः ।	श्लोकः ।	पृष्ठे ।
अन्यरसानामङ्गतैव	....	....	३	३४	८९
प्रत्यक्षमनिर्देश्यानि	....	....	३	३५	८९
नायकवधसूचननिषेधः	....	....	३	३६	८९
आवश्यकं न त्याज्यम्	....	....	३	३६	८९
अङ्के पात्रसंख्या	....	....	३	३७	८९
अङ्कान्ते पात्रनिर्गमः	....	....	३	३७	८९
अङ्करचनप्रकारः	....	....	३	३७	९०
नाटकेऽङ्कसंख्या	....	....	३	३८	९०
प्रकरणे विषयाः	....	....	३	३८	९०
प्रकरणे वर्णनीयनायिका	....	....	३	४१	९०
नाटिकाविषयनिर्णयः	....	....	३	४२	९०
नाटिकायां विशेषः	....	....	३	४३	९१
नाटिकायां प्राप्यनायिका	....	....	३	४६	९१
नाटिकायां नायकः	....	....	३	४७	९२
नाटिकायां वृत्तिनियमः	....	....	३	४८	९२
भाणविषयाः	....	....	३	४२	९२
लास्याङ्गानि	....	....	३	५२	९३
प्रहसनभेदानामानि	....	....	३	५४	९३
शुद्धप्रहसनम्	....	....	३	५५	९३
विकृतसंकीर्णप्रहसने	....	....	३	५५-५६	९३
प्रहसने हास्यरसः	....	....	३	५६	९३
डिमे विषयनियमाः	....	....	३	५७	९३
व्यायोगे विषयनियमाः	....	....	३	६०	९४
समवकारे विषयनियमाः	....	....	३	६२	९४
वीथ्यां विषयनियमाः	....	....	३	६८	९५
अङ्के विषयनियमाः	....	....	३	७०	९५
ईहामृगे विषयनियमाः	....	....	३	७२	९५



			प्रकाशः ।	श्लोकः ।	पृष्ठे ।
चतुर्थः प्रकाशः ।					
रसनिरूपणम्....	....	....	४	१	९७
विभावलक्षणभेदौ	....	....	४	२	९७
आलम्बनविभावः	....	....	४	२	९७
उद्दीपनविभावः	....	....	४	२	९८
अनुभावः ....	....	....	४	३	९८
भावः ....	....	....	४	४	९८
सात्त्विकभावलक्षणम्	....	....	४	४	९९
स्तम्भादिसात्त्विकभावानां नामलक्षणे	....	....	४	५-६	९९
व्यभिचारिभावलक्षणम्	....	....	४	७	९९
व्यभिचारिभावनानामानि	....	....	४	८	९९
निर्वेदः ....	....	....	४	९	१००
ग्लानिः ....	....	....	४	१०	१०१
शङ्का ....	....	....	४	११	१०१
श्रमः ....	....	....	४	१२	१०१
धृतिः ....	....	....	४	१२	१०२
जडता ....	....	....	४	१३	१०२
हर्षः ....	....	....	४	१४	१०३
दैन्यम् ....	....	....	४	१४	१०३
औश्र्यम् ....	....	....	४	१५	१०३
चिन्ता ....	....	....	४	१६	१०४
त्रासः ....	....	....	४	१६	१०४
असूया ....	....	....	४	१७	१०४
अमर्षः ....	....	....	४	१८	१०५
गर्वः ....	....	....	४	१९	१०५
स्मृतिः ....	....	....	४	२०	१०६
मरणम् ....	....	....	४	२१	१०६
मदः ....	....	....	४	२१	१०७

	प्रकाशः ।	श्लोकः ।	पृष्ठे ।
सुप्तम् ....	४	२२	१०७
निद्रा ....	४	२३	१०७
विबोधः ....	४	२४	१०८
व्रीडा ....	४	२४	१०८
अपस्मारः ....	४	२५	१०८
मोहः ....	४	२६	१०९
मतिः ....	४	२७	१०९
आलस्यम् ....	४	२७	१०९
आवेगः सभेदः ....	४	२८	१०९
वितर्कः ....	४	२८	११२
अवहित्थम् ....	४	२९	११२
व्याधिः ....	४	२९	११२
उन्मादः ....	४	३०	११२
विषादः ....	४	३१	११३
औत्सुक्यम् ....	४	३२	११३
चापलम् ....	४	३३	११३
स्थायी ....	४	३४	११४
स्थायिनामानि ....	४	३४	११४
शान्तरसे शमस्थायिनि विप्रतिपत्तिः ....	४	३५	११७
स्थायिभावोपसंहारः ....	४	३६	११७
काव्येषु स्थायिभावस्यैव वाक्यार्थत्वम् ....	४	३७	१२०
रसिकमात्रवृत्तित्वं रसस्य ....	४	३८	१२१
धीरोदात्ताद्यवस्थाप्रतिपादकाः ....	४	४०	१२२
धीरोदात्ताद्यवस्थानामेव रसहेतुत्वम् ....	४	४१	१२२
श्रोतृणामास्वादहेतुत्वम् ....	४	४२	१२२
नर्तकेऽप्यास्वादः ....	४	४२	१२२
आस्वादस्य लक्षणं भेदाश्च ....	४	४३	१२३
शमस्यानिर्वचनीयता ....	४	४५	१२४

	प्रकाशः ।	श्लोकः ।	पृष्ठे ।
विभावाद्युपसंहारः ....	४	४६	१२४
रसभावयोर्लक्षणैक्यप्रतिज्ञा ....	४	४७	१२४
शृङ्गारः ....	४	४८	१२४
भावसंख्या ....	४	४९	१२७
शृङ्गारस्य भेदाः ....	४	५०	१२७
अयोगः ....	४	५०	१२७
तस्य दशावस्था ....	४	५१	१२७
अभिलाषः ....	४	५३	१२७
दर्शनश्रवणे ....	४	५४	१२७
वृत्तीनां दशावस्थानामपि महाकविनिबन्धेष्व- नेकविधत्वम् ....	४	५४	१२८
दिङ्मात्रम् ....	४	५६	१२८
विप्रयोगद्वैविध्यम् ....	४	५७	१२८
मानद्वैविध्यम् ....	४	५८	१२९
प्रणयमानः ....	४	५८	१२९
ईर्ष्यामानत्रैविध्यम् ....	४	५९	१२९
श्रुतिः ....	४	५९	१२९
आनुमानिकस्त्रिविधः ....	४	६०	१२९
दृष्टः ....	४	६०	१२९
मानोपचारः ....	४	६१	१३०
साम ....	४	६२	१३०
भेदः ....	४	६२	१३०
दानम् ....	४	६२	१३०
सामादीनां कार्यासाधकत्वे उपेक्षा ....	४	६३	१३०
रभसादिना कोपनाशे रसान्तरत्वम् ....	४	६३	१३०
कार्यजप्रवासविप्रयोगस्त्रिधा ....	४	६४	१३२
संभ्रमजप्रवासविप्रयोगः ....	४	६६	१३३
शापजप्रवासः ....	४	६६	१३३
मृते तु शोक एव न शृङ्गारः ....	४	६७	१३३

	प्रकाशः । श्लोकः ।	पृष्ठे ।
उत्का ....	४ ६८	१३३
प्रोपितप्रिया ....	४ ६८	१३३
कलहान्तरिता ....	४ ६८	१३३
खण्डिता ....	४ ६८	१३३
संभोगः ....	४ ६९	१३३
संभोगे लीलाद्या दश चेष्टाः ....	४ ७०	१३४
नायककर्तव्यम् ....	४ ७१	१३४
वीरस्त्रिधा ....	४ ७२	१३४
बीभत्सस्त्रिधा ....	४ ७३	१३५
रौद्रस्त्रिधा ....	४ ७४	१३५
हास्यस्त्रिधा ....	४ ७५	१३५
स्मितम् ....	४ ७६	१३७
हसितम् ....	४ ७६	१३७
विहसितम् ....	४ ७६	१३७
उपहसितम् ....	४ ७७	१३७
अपहसितम् ....	४ ७७	१३७
अतिहसितम् ....	४ ७७	१३७
उत्तममध्यमाधमभेदेन हसितभेदाः ....	४ ७७	१३७
हासव्यभिचारिणः ....	४ ७८	१३७
अद्भुतः ....	४ ७८	१३७
अद्भुतानुभावव्यभिचारिणः ....	४ ७९	१३७
भयानकः ....	४ ८०	१३८
भयानकानुभावव्यभिचारिणः ....	४ ८०	१३८
करुणः ....	४ ८१	१३८
करुणानुभावव्यभिचारिणः ....	४ ८२	१३८
प्रीतिभक्त्यादीनामन्तर्भावः ....	४ ८३	१३९
भूषणादीनामन्तर्भावः ....	४ ८४	१३९
सर्वस्यापि रसभावोपादानम् ....	४ ८५	१३९
ग्रन्थसमाप्तिः ....	४ ८६	१३९

॥ श्रीः ॥  
श्रीधनंजयविरचितं  
दशरूपकम् ।

धनिककृतयावलोकाख्यया व्याख्यया समेतम् ।

प्रथमः प्रकाशः ।

इह सदाचारं प्रमाणयद्विरविघ्नेन प्रकरणस्य समाप्त्यर्थमिष्टयोः प्रकृता-  
भिमतदेवतयोर्नमस्कारः क्रियते श्लोकद्वयेन—

नमस्तस्मै गणेशाय यत्कण्ठः पुष्करायते ।

मदाभोगधनध्वानो नीलकण्ठस्य ताण्डवे ॥ १ ॥

यस्य कण्ठः पुष्करायते मृदङ्गवदाचरति । मदाभोगेन धनध्वानो  
निविडध्वनिः । नीलकण्ठस्य शिवस्य ताण्डव उद्धते नृत्ते । तस्मै ग-  
णेशाय नमः । अत्र खण्डश्लेषाक्षिप्यमाणोपमाच्छायालंकारः । नीलकण्ठस्य  
मयूरस्य ताण्डवे यथा मेघध्वनिः पुष्करायत इति प्रतीतिः ॥

दशरूपानुकारेण यस्य माद्यन्ति भावकाः ।

नमः सर्वविदे तस्मै विष्णवे भरताय च ॥ २ ॥

एकत्र मत्स्यकूर्मादिप्रतिमानामुद्देशेन, अन्यत्रानुकृतिरूपनाटकादिना  
यस्य भावका ध्यातारो रसिकाश्च माद्यन्ति हृष्यन्ति तस्मै विष्णवेऽभिमताय  
प्रकृताय भरताय च नमः ॥

श्रोतुः प्रवृत्तिनिमित्तं प्रदर्श्यते—

कस्यचिदेव कदाचिद्दयया विषयं सरस्वती विदुषः ।

घटयति कमपि तमन्यो ब्रजति जनो येन वैदग्धीम् ॥ ३ ॥

तं कंचिद्विषयं प्रकरणादिरूपं कदाचिदेव कस्यचिदेव कवेः सर-  
स्वती योजयति । येन प्रकरणादिना विषयेणान्यो जनो विदग्धो भवति ॥

स्वप्रवृत्तिविषयं दर्शयति—

उद्धृत्योद्धृत्य सारं यमखिलनिगमान्नाख्यवेदं विरिञ्चि-

श्रक्ने यस्य प्रयोगं मुनिरपि भरतस्ताण्डवं नीलकण्ठः ।

शर्वाणी लास्यमस्य प्रतिपदमपरं लक्ष्म कः कर्तुमीष्टे

नाख्यानां किंतु किञ्चित्प्रगुणरचनया लक्षणं संक्षिपामि ॥ ४ ॥

यं नाट्यवेदं वेदेभ्यः सारमादाय ब्रह्मा कृतवान्, यत्संबद्धमभिनयं भर-  
तश्चकार करणाङ्गहारानकरोत्, हरस्ताण्डवमुद्धतं लास्यं सुकुमारं नृत्तं पा-  
र्वती कृतवती, तस्य सामस्त्येन लक्षणं कर्तुं कः शक्तः । तदेकदेशस्य तु  
दशरूपस्य संक्षेपः क्रियत इत्यर्थः ॥

विषयैर्नयप्रमत्तं पौनरुक्त्यं परिहरति—

व्याकीर्णे मन्दबुद्धीनां जायते मतिविभ्रमः ।

तस्यार्थस्तत्पदैस्तेन संक्षिप्य क्रियतेऽञ्जसा ॥ ५ ॥

व्याकीर्णे विक्षिप्ते विस्तीर्णे च रसशास्त्रे मन्दबुद्धीनां पुंसां मतिमोहो  
भवति, तेन तस्य नाट्यवेदस्यार्थस्तत्पदैरेव संक्षिप्य ऋजुवृत्त्या क्रियत इति ॥

इदं प्रकरणं दशरूपज्ञानफलम् । दशरूपं निःफलमित्याह—

आनन्दनिःस्पन्देषु रूपकेषु व्युत्पत्तिमात्रं फलमल्पबुद्धिः ।

योऽपीतिहासादिवदाह साधुस्तस्मै नमः स्वादुपराङ्मुखाय ॥ ६ ॥

तत्र केचित् 'धर्मार्थकाममोक्षेषु वैचक्षण्यं कलासु च । करोति कीर्तिं  
प्रीतिं च साधुकाव्यनिषेवणम् ॥' इत्यादिना त्रिवर्गादिव्युत्पत्तिं काव्यफल-  
त्वेनेच्छन्ति तन्निरासेन स्वसंवेद्यः परमानन्दरूपो रसास्वादो दशरूपाणां  
फलम्, न पुनरितिहासादिवत्त्रिवर्गादिव्युत्पत्तिमात्रमिति दर्शितम् । नम इति  
सोऽष्टुण्ठम् ॥

'नाट्यानां लक्षणं संक्षिपामि' इत्युक्तम् । किं पुनस्तन्नाट्यमित्याह—

अवस्थानुकृतिर्नाट्यं

काव्योपनिबद्धधीरोदात्ताद्यवस्थानुकारश्चतुर्विधाभिनयेन तादात्म्यं त-  
र्नाट्यम् ॥

रूपं दृश्यतयोच्यते ।

तदेव नाट्यं दृश्यमानतया रूपमित्युच्यते । नीलादिरूपवत् ॥

रूपकं तत्समारोपाद्

नटे रामाद्यवस्थारोपेण वर्तमानत्वाद्वृक्षकम् । मुखचन्द्रादिवदित्येकस्मिन्नर्थे  
प्रवर्तमानस्य शब्दत्रयस्य 'इन्द्रः पुरंदरः शक्रः' इतिवत्प्रवृत्तिनिमित्तभेदो  
दर्शितः ॥

दशधैव रसाश्रयम् ॥ ७ ॥

प्रथमः प्रकाशः ।

रसानाश्रित्य वर्तमानं दशप्रकारकम् । एवेत्यवधारणं शुद्धाभिप्रायेण  
नाटिकायाः संकीर्णत्वेन वक्ष्यमाणत्वात् ॥  
तानेव दशभेदानुद्दिशति—

नाटकं सप्रकरणं भाणः प्रहसनं डिमः ।

व्यायोगसमवकारौ वीथ्यङ्केहामृगा इति ॥ ८ ॥

ननु 'डोम्बी श्रीगदितं भाणो भाणीप्रस्थानरासकाः । काव्यं च सप्त  
नृत्यस्य भेदाः स्युस्तेऽपि भाणवत् ॥' इति रूपकान्तराणामपि भावादवधारणानुपपत्तिरित्याशङ्क्याह—

अन्यद्भावाश्रयं नृत्यं

रसाश्रयान्नाट्याद्भावाश्रयं नृत्यमन्यदेव । तत्र भावाश्रयमिति विषयभेदाद्वृत्त्यमिति नृतेर्गात्रविक्षेपार्थत्वेनाङ्गिकबाहुल्यात्तत्कारिषु च नर्तकव्यपदेशाल्लोकेऽपि चात्र प्रेक्षणीयकमिति व्यवहारान्नाटकादेरन्यनृत्यम् । तद्वेदत्वाच्छ्रीगदितादेरवधारणोपपत्तिः । नाटकादि च रसविषयम् । रसस्य च पदार्थाभूतविभागादिकर्ममर्गात्मकत्वात् तदर्थहेतुकत्वाद्वाक्यार्थाभिनयात्मकत्वं रसाश्रयमित्यनेन दर्शितम् । नाट्यमिति च 'नट अवस्पन्दने' इति नटः किति च नाट्यात्मातिशयात्तत्त्वम् । अतएव तत्कारिषु नटव्यपदेशः । यथा च गात्रविशेषार्थत्वे समानेऽप्यनुकारात्मकत्वेन नृत्तादन्यनृत्यं तथा वाक्यार्थाभिनयात्मकान्नाट्यात्पदार्थाभिनयात्मकमन्यदेव नृत्यमिति ॥

प्रसङ्गान्नृत्तं व्युत्पादयति—

नृत्तं ताललयाश्रयम् ।

तालश्चतुष्टयः । लयो द्रुतादिः । तन्मात्रापेक्षोऽङ्गविक्षेपोऽभिनय-  
शून्यो नृत्तमिति ॥

अनन्तरोक्तं द्वितयं व्याचष्टे—

आद्यं पदार्थाभिनयो मार्गो देशी तथा परम् ॥ ९ ॥

नृत्यं पदार्थाभिनयात्मकं मार्ग इति प्रसिद्धम् । नृत्तं च देशीति ॥

द्विविधस्यापि द्वैविध्यं दर्शयति—

मधुरोद्धतभेदेन तद्वयं द्विविधं पुनः ।

लास्यताण्डवरूपेण नाटकाद्युपकारकम् ॥ १० ॥

सुकुमारं द्वयमपि लास्यमुद्धतं द्वितयमपि ताण्डवमिति । प्रसङ्गोक्तस्यो-

पयोगं दर्शयति—तच्च नाटकाद्युपकारकमिति । नृत्यस्य कचिदवान्तरपदार्था-  
भिनयेन नृत्तस्य च शोभाहेतुत्वेन नाटकादावुपयोग इति ॥

अनुकारात्मकत्वेन रूपाणामभेदात्किञ्चित्तो भेद इत्याशङ्क्याह—

**वस्तु नेता रसस्तेषां भेदको**

वस्तुभेदाच्चायकभेदाद्रसभेदाद्रूपाणामन्योन्यं भेद इति ॥

वस्तुभेदमाह—

**वस्तु च द्विधा ।**

कथमित्याह—

**तत्राधिकारिकं मुख्यमङ्गं प्रासङ्गिकं विदुः ॥ ११ ॥**

प्रधानभूतमाधिकारिकम् । यथा रामायणे रामसीतावृत्तान्तः । तदङ्गभूतं  
प्रासङ्गिकम् । यथा तत्रैव विभीषणसुग्रीवादिवृत्तान्त इति ॥

निरुक्त्याधिकारिकं लक्षयति—

**अधिकारः फलस्वाम्यमधिकारी च तत्प्रभुः ।**

**तन्निर्वर्त्यमभिव्यापि वृत्तं स्यादाधिकारिकम् ॥ १२ ॥**

फलेन स्वस्वामिसंबन्धोऽधिकारः फलस्वामी चाधिकारी तेनाधिकारेणा-  
धिकारिणा वा निर्वृत्तं फलपर्यन्ततां नीयमानमिति वृत्तमाधिकारिकम् ॥

प्रासङ्गिकं व्याचष्टे—

**प्रासङ्गिकं परार्थस्य स्वार्थो यस्य प्रसङ्गतः ।**

यस्येति वृत्तस्य परप्रयोजनस्य सतस्तत्प्रसङ्गात्स्वप्रयोजनसिद्धिस्तत्प्रासङ्गि-  
कमिति वृत्तं प्रसङ्गनिर्वृत्तेः ॥

प्रासङ्गिकमपि पताकाप्रकरीभेदाद्विविधमित्याह—

**सानुबन्धं पताकाख्यं प्रकरी च प्रदेशभाक् ॥ १३ ॥**

दूरं यदनुवर्तते प्रासङ्गिकं सा पताका । सुग्रीवादिवृत्तान्तवत् । पताके-  
वासाधारणनायकचिह्नवत्तदुपकारित्वात् । यदल्पं सा प्रकरी । श्रवणादि-  
वृत्तान्तवत् ॥

पताकाप्रसङ्गेन पताकास्थानकं व्युत्पादयति—

**प्रस्तुतागन्तुभावस्य वस्तुनोऽन्योक्तिसूचकम् ।**

**पताकास्थानकं तुल्यसंविधानविशेषणम् ॥ १४ ॥**



प्राकरणिकस्य भाविनोऽर्थस्य सूचकं रूपं पताकावद्भवतीति पताकास्थानकम् । तच्च तुल्येतिवृत्ततया तुल्यविशेषणतया च द्विप्रकारम् । अन्योक्तिममासोक्तिभेदात् । यथा रत्नावल्याम्—

‘यातोऽस्मि पद्मनयने समयो ममैष सुप्ता मयैव भवती प्रतिबोधनीया ।  
प्रत्यायनामयमितीव सरोरुहिण्याः सूर्योऽस्तमस्तकनिविष्टकरः करोति ॥’  
यथा च तुल्यविशेषणतया—

‘उद्दामोत्कलिकां विपाण्डुररुचं प्रारब्धजृम्भां क्षणा-  
दायासं श्वसनोद्गमैरविरलैरातन्वतीमात्मनः ।  
अद्योद्यानलतामिमां समदनां नारीमिवान्यां ध्रुवं  
पश्यन्कोपविपाटलद्युतिं मुखं देव्याः करिष्याम्यहम् ॥’

एवमाधिकारिकद्विविधप्रासङ्गिकभेदात्रिविधस्यापि त्रैविध्यमाह—

प्रख्यातोत्पाद्यमिश्रत्वभेदात्रेधापि तत्रिधा ।  
प्रख्यातमितिहासादेरुत्पाद्यं कविकल्पितम् ॥ १५ ॥  
मिश्रं च संकरार्त्ताभ्यां दिव्यमर्त्यादिभेदतः ।

इति निगदव्याख्यातम् ॥

तस्येतिवृत्तस्य किं फलमित्याह—

कार्यं त्रिवर्गस्तच्छुद्धमेकानेकानुबन्धि च ॥ १६ ॥

धर्मार्थकामाः फलम् । तच्च शुद्धमेकैकमेकानुबन्धं द्वित्र्यनुबन्धं वा ॥

तत्साधनं व्युत्पादयति—

स्वल्पोद्दिष्टस्तु तद्धेतुर्बीजं विस्तार्यनेकधा ।

स्तोकोद्दिष्टः कार्यसाधकः पुरस्तादनेकप्रकारं विस्तारी हेतुविशेषो बीजवद्बीजम् । यथा रत्नावल्यां वत्सराजस्य रत्नावलीप्राप्तिहेतुरनुकूलदैवो यौगंधरायणव्यापारो विष्कम्भके न्यस्तः—‘यौगंधरायणः—कः संदेहः । (‘द्वीपादन्यस्मात्—’इति पठति ।)’ इत्यादिना ‘प्रारम्भेऽस्मिन्त्वामिनो वृद्धिहेतौ’ इत्यन्तेन ।

यथा च वेणीसंहारे द्रौपदीकेशसंयमनहेतुर्भीमक्रोधोपचितयुधिष्ठिरोत्साहो बीजमिति । तच्च महाकार्यावान्तरकार्यहेतुभेदादनेकप्रकारमिति ॥

१. ‘नान्तो’, ‘त्रेधा’ इति पाठौ.

अवान्तरबीजस्य संज्ञान्तरमाह—

अवान्तरार्थविच्छेदे विन्दुरच्छेदकारणम् ॥ १७ ॥

यथा रत्नावल्यामवान्तरप्रयोजनानङ्गपूजापरिसमाप्तौ कथार्थविच्छेदे सत्य-  
नन्तरकार्यहेतुः—‘उदयनस्येन्द्रो रिबोद्वीक्षते । सागरिका—(श्रुत्वा १) केहं  
एसो सो उदयणणरिन्दो जस्स अहं तादेण दिण्णा ।’ इत्यादि । विन्दुर्जले  
तैलविन्दुवत्प्रसारित्वात् ॥

इदानीं पताकाद्यं प्रसङ्गाद्व्युत्क्रमोक्तं क्रमार्थमुपसंहरन्नाह—

बीजविन्दुपताकाख्यप्रकरीकार्यलक्षणम् ॥

अर्थप्रकृतयः पञ्च ता एताः परिकीर्तिताः ॥ १८ ॥

अर्थप्रकृतयः प्रयोजनसिद्धिहेतवः ॥

अन्यदवस्थापञ्चकमाह—

अवस्थाः पञ्च कार्यस्य प्रारम्भस्य फलार्थिभिः ।

आरम्भयत्नप्राप्त्याशानियताप्तिफलागमाः ॥ १९ ॥

यथोद्देशं लक्षणमाह—

औत्सुक्यमात्रमारम्भः फललाभाय भूयसे ।

इदमहं संपादयामीत्यध्यवसायमात्रमारम्भ इत्युच्यते । यथा रत्नाव-  
ल्याम्—‘प्रारम्भेऽस्मिन्स्वामिनो वृद्धिहेतौ दैवे चेत्थं दत्तहस्तावलम्बे ।’  
इत्यादिना सचिवायत्तसिद्धेर्वत्सराजस्य कार्यारम्भो गौगंधरायणस्य  
दर्शितः ॥

अथ प्रयत्नः—

प्रयत्नस्तु तदप्राप्तौ व्यापारोऽतित्वरान्वितः ॥ २० ॥

तस्य फलस्याप्राप्तावुपाययोजनादिरूपश्चेष्टाविशेषः प्रयत्नः । यथा रत्ना-  
वल्यामालेख्याभिलेखनादिर्वत्सराजसमागमोपायः—‘तैहावि णत्थि अण्णो  
दंमणुवाओ त्ति जहातहा आलिहिअ जथासमीहिअं करिस्सम् ।’ इत्यादिना  
प्रतिपादितः ॥

१. ‘कथमेव स उदयनरेन्द्रो यस्याहं तानेन दत्ता ।’ इति च्छाया. २. ‘तथापि  
नास्त्यन्यो दर्शनोपाय इति यथान्तालिख्य यथासमीहितं करिष्यामि ।’ इति च्छाया.

प्राप्त्याशामाह—

**उपायापायशङ्काभ्यां प्राप्त्याशा प्राप्तिसंभवः ।**

उपायस्यापायशङ्कायाश्च भावादनिर्धारितैकान्ता फलप्राप्तिः प्राप्त्याशा । यथा रत्नावल्यां तृतीयेऽङ्के वेषपरिवर्ताभिसरणादौ समागमोपाये सति वा-  
सवदत्तालक्षणापायशङ्कायाः—‘एवं यदि अआलवादाली विअ आअच्छिअ  
अण्णदो ण णइस्सदि वासवदत्ता ।’ इत्यादिना दर्शितत्वादनिर्धारितैकान्ता स-  
मागमप्राप्तिरुक्ता ॥

नियतासिमाह—

**अपायाभावतः प्राप्तिनियतासिः सुनिश्चिता ॥ २१ ॥**

अपायाभावादवधारितैकान्ता फलप्राप्तिर्नियतामिरिति । यथा रत्नाव-  
ल्याम्—‘विदूषकः—सागरिका दुक्करं जीविस्सदि ।’ इत्युपक्रम्य ‘किं<sup>१</sup> ण  
उपायं चिन्तेसि ।’ इत्यनन्तरम् ‘राजा—वयस्य, देवीप्रसादनं मुक्त्वा  
नान्यमत्रोपायं पश्यामि ।’ इत्यनन्तराङ्कार्थविन्दुनानेन देवीलक्षणापायस्य  
प्रसादनेन निवारणान्विता फलप्राप्तिः सूचिता ॥

फलयोगमाह—

**समग्रफलसंपत्तिः फलयोगो यथोदितः ।**

यथा रत्नावल्यां रत्नावलीलाभचक्रवर्तित्वावासिरिति ॥

संधिलक्षणमाह—

**अर्थप्रकृतयः पञ्च पञ्चावस्थासमन्विताः ॥ २२ ॥**

**यथासंख्येन जायन्ते मुखाद्याः पञ्च संधयः ।**

अर्थप्रकृतीनां पञ्चानां यथासंख्येनावस्थाभिः पञ्चभिर्योगाद्यथासंख्येनैव  
वक्ष्यमाणा मुखाद्याः पञ्च संधयो जायन्ते ॥

संधिसामान्यलक्षणमाह—

**अन्तरैकार्थसंबन्धः संधिरेकान्वये सति ॥ २३ ॥**

एकेन प्रयोजनेनान्वितानां कथांशानामवान्तरैकप्रयोजनसंबन्धः संधिः ॥

के पुनस्ते संधयः—

**मुखप्रतिमुखे गर्भः सावमर्शोपसंहतिः ।**

१. ‘एवं यद्यकालवातालीवागत्यान्यतो न नेष्यति वासवदत्ता ।’ इति च्छाया. २. ‘सा-  
गरिका दुक्करं जीविष्यति ।’ इति च्छाया. ३. ‘किं नोपायं चिन्तयसि ।’ इति च्छाया.

यथोद्देशं लक्षणमाह—

मुखं बीजसमुत्पत्तिर्नानार्थरससंभवा ॥ २४ ॥

अङ्गानि द्वादशैतस्य बीजारम्भसमन्वयात् ।

बीजानामुत्पत्तिरनेकप्रकारप्रयोजनस्य रसस्य च हेतुमुखसंधिरिति व्याख्यायम् । तेनात्रिवर्गफले प्रहसनादौ रसोत्पत्तिहेतोरेव बीजत्वमिति । अस्य च बीजारम्भार्थयुक्तानि द्वादशाङ्गानि भवन्ति ॥

तान्याह—

उपक्षेपः परिकरः परिन्यासो विलोभनम् ॥ २५ ॥

युक्तिः प्राप्तिः समाधानं विधानं परिभाषना ।

उद्भेदभेदकरणान्यन्वर्थान्यथ लक्षणम् ॥ २६ ॥

एतेषां स्वसंज्ञाव्याख्यातानामपि सुखार्थं लक्षणं क्रियते—

बीजन्यास उपक्षेपः

यथा रत्नावल्याम्—(नेपथ्ये ।)

द्वीपादन्यस्मादपि मध्यादपि जलनिधेर्दिशोऽप्यन्तात् ।

आनीय झटिति घटयति विधिरभिमतमभिमुखीभूतः ॥'

इत्यादिना यौगंधरायणो वत्सराजस्य रत्नावलीप्रामिहेतुभूतमनुकूलदैवं स्वव्यापारं बीजत्वेनोपक्षिप्तवानित्युपक्षेपः ॥

परिकरमाह—

तद्वाहुल्यं परिक्रिया ।

यथा तत्रैव—'अन्यथा क सिद्धादेशप्रत्ययप्रार्थितायाः सिंहलेश्च हितुः समुद्रे प्रवहणभङ्गमश्रोत्थितायाः फलकासादनम् ।' इत्यादिना 'सर्वथा सृष्टशन्ति स्वामिनमभ्युदयाः ।' इत्यन्तेन बीजोत्पत्तेरेव बहुकरणात्परिकरः ॥

परिन्यासमाह—

तन्निष्पत्तिः परिन्यासो

यथा तत्रैव—

'प्रारम्भेऽस्मिन्स्वामिनो वृद्धिहेतौ दैवे चेत्थं दत्तहस्तावलम्बे ।

सिद्धेर्भ्रान्तिर्नास्ति सत्यं तथापि स्वेच्छाकारी भीत एवास्मि भर्तुः ॥'

इत्यनेन यौगंधरायणः स्वव्यापारदैवयोर्निष्पत्तिमुक्तवानिति परिन्यासः ॥

विलोभनमाह—

गुणाख्यानं विलोभनम् ॥ २७ ॥

यथा रत्नावल्याम्—

‘अन्तापान्नममस्तभासि नभसः पारं प्रयाते रवा-  
वास्थानीं समये समं नृपजनः सायंतने संपतन् ।

संप्रत्येष सरोरुहद्युतिमुषः पादांस्तवासेवितुं  
प्रीत्युत्कर्षकृतो दशामुदयनस्येन्दोरिवोद्वीक्षते ॥’

इति वैतालिकमुखेन चन्द्रतुल्यवत्सराजगुणवर्णनया सागरिकायाः समाग-  
महेत्वनुरागबीजानुगुण्येनैव विलोभनाद्विलोभनमिति ।

यथा च वेणीसंहारे—

‘मन्थायस्तार्णवाग्भःप्लुतकुहरवलन्मन्दरध्वानधीरः  
कोणाघातेषु गर्जन्प्रलम्बघनपशान्योन्यमंघट्टचण्ड ।

कृष्णाक्रोधाग्रदूतः कुरुकुलनिधनोत्पातनिर्घातवातः

हेनाग्मन्मिंहना इप्रतिगमिवग्मनो दुन्दुभिस्ताडिनोऽयम् ॥’

इत्यादिना ‘यशोदुन्दुभिः ।’ इत्यन्तेन द्रौपद्या विलोभनाद्विलोभनमिति ॥

अथ युक्तिः—

संप्रधारणमर्थानां युक्तिः

यथा रत्नावल्याम्—‘मयापि चैनां देवीहस्ते सबहुमानं निक्षिपता युक्त-  
मेवानुष्ठितम् । कथितं च मया यथा बाभ्रव्यः कञ्चुकी सिंहलेश्वरामात्येन वसु-  
भूतिना सह कथंकथमपि समुद्रादुत्तीर्य कोशलोच्छित्तये गतस्य रुमण्वतो  
घटितः ।’ इत्यनेन सागरिकाया अन्तःपुरस्थाया वत्सराजस्य सुखेन दर्शनादि-  
प्रयोजनावधारणाद्बाभ्रव्यसिंहलेश्वरामात्ययोः स्वनायकसमागमहेतुप्रयोजन-  
त्वेनावधारणाद्युक्तिरिति ॥

अथ प्राप्तिः—

प्राप्तिः सुखागमः ।

यथा वेणीसंहारे—‘चेटी—भेट्टिणि, परिकुविदो विअ कुमारो ल-  
क्खीयदि ।’ इत्युपक्रमे ‘भीमः—

१. ‘गुणाख्यानात्’ इति पाठः. २. ‘भट्टि, परिकुपित इव कुमारो लक्ष्यते ।’ इति  
च्छाया.

मश्नामि कौरवशतं समरे न कोपा-

हुःशासनस्य रुधिरं न पिबाम्युरस्तः ।

संचूर्णयामि गदया न सुयोधनोरु

संधिं करोतु भवतां नृपतिः पणेन ॥

**द्रौपदी**—(श्रुत्वा सहर्षम् ।) नाथ, अस्सुदपुत्रं खु एदं वअणम् । ता पुणो पुणो भण ।' इत्यनेन भीमक्रोधबीजान्वयेनैव सुखप्राप्त्या द्रौपद्याः प्राप्तिरिति ।

यथा च रत्नावल्याम्—**'सागरिका'**—(श्रुत्वा सहर्षं परिवृत्य सस्पृहं पश्यन्ती ।) कैधं अअं सो राआ उदयणो जस्स अहं तादेण दिण्णा । ता परप्पेसणदूसिदं मे जीविदं एदस्स दंसणेण बहुमदं संजादम् ।' इति सागरिकायाः सुगागगायनमिरिति ॥

अथ समाधानम्—

**बीजागमः समाधानं**

यथा रत्नावल्याम्—**'वासवदत्ता'**—तेण हि उअणेहि मे उवअरणइ । **सागरिका**—**'भट्टिणि'**, एदं सव्वं सज्जम् । **वासवदत्ता**—(निहण्याननम् ।) अहो प्रमादो परिअणस्स । जस्स एव्व दंसणपहादो पअत्तेण रक्खीअदि तस्स जेव कहं दिट्ठिगोअरं आअदा । भोदु । एव्वं दाव । (प्रकाशम् ।) हज्जे सागरिए, कीस तुमं अज्ज पराहीणे परिअणे मअणूसवे सारिअं भोत्तूण इहागदा । ता तहि जेव गच्छ ।' इत्युपक्रमे **'सागरिका'**—(स्वगतम् ।) 'मारिआ त मए सुसंगदाए हत्थे समप्पिदा । पेक्खिदुं च मे कुतूहलम् । ता नल-  
न्निवआ पेक्खिस्सम् ।' इत्यनेन वासवदत्ताया रत्नावलीवत्सरानयोर्दर्श-

१. 'नाथ, अश्रुतपूर्वं खल्वेतद्वचनम् । तत्पुनः पुनर्भण ।' इति च्छाया. २. 'कथमयं स राजोदयनो यस्याहं तातेन दत्ता । तत्परप्रेषणदृष्टितं मे जीवितमंतस्य दर्शनेन बहुमतं संजातम् ।' इति च्छाया. ३. 'तेन ह्युपनय म उपकरणानि ।' इति च्छाया. ४. 'भक्ति, एतत्सर्वं सज्जम् ।' इति च्छाया. ५. 'अहो प्रमादः परिजनस्य । यस्यैव दर्शनपथात्प्रयत्नेन रक्ष्यते तस्यैव कथं दृष्टिगोचरमागता । भवतु । एवं तावत् । चेष्टि सागरिके, कथं त्वमद्य परार्थीने परिजने मदन्तोत्सवे सारिकां मुक्त्वेहागता । तस्मात्तत्रैव गच्छ ।' इति च्छाया. ६. 'सारिका तावन्मया सुसंगताया हस्ते समर्पिता । प्रेक्षितुं च मे कुतूहलम् । तदलक्षिता प्रेक्षिष्ये ।' इति च्छाया.

नप्रतीकारात्सारिकायाः सुसंगतार्पणेनालक्षितप्रेक्षणेन च वत्सराजसमागमहे-  
तोर्बीजस्योपादानात्समाधानमिति ।

यथा च वेणीमंहारे—‘भीमः—भवतु । पाञ्चालराजतनये. श्रूयताम-  
चिरेणैव कालेन

चञ्चद्भुजभ्रमितचण्डगदाभिवानमंयूर्णितोरुयुगलस्य सुयोधनस्य ।  
स्यानावनद्धनशोणितशोणपाणिरुत्तमगिष्यनि कचांस्तव देवि भीमः॥’  
इत्यनेन वेणीमंहारहेतोः क्रोधीजस्य पुनरुपादानात्ममाधानम् ॥

अथ विधानम्—

विधानं सुखदुःखकृन् ॥ २८ ॥

यथा मालतीमाधवे प्रथमेऽङ्के—‘माधवः—

गुन्त्या गृह्णन्ति कन्याग्रमाननं त-  
दावृत्तवृत्तशतपलनिभं वहन्त्या ।  
दिग्धोऽमृतेन च विषेण च पश्मलादया  
गाढं निग्रात इव मे हृदये कटाक्षः ॥  
गन्धिमगन्धिमितमन्नमिताः पमाः ।  
मानः दमः दमगन्तान्ति रागः ।  
तत्संनिधौ तदधुना हृदयं मदीय-  
मङ्गारचुम्बितमिव न्यगमानमान्ने ॥’

इत्यनेन मालत्यवलोकनस्यानुरागस्य समागमहेतोर्बीजानुगुण्येनैव माधवस्य  
सुखदुःखकारित्वाद्विधानमिति ।

यथा च वेणीसंहारे—‘द्रौपदी—ष्ठाध, पुणोवितुस्मेहिं अहं आअच्छिअ  
समाप्तासिदव्वा । भीमः—ननु पाञ्चालराजतनये, किमद्याप्यलीकाश्वासनया ।

भूयः परिभवक्लान्तिलज्जाविधुरिताननम् ।  
अनिःशेषितकौरव्यं न पश्यसि वृकोदरम् ॥’

इति सङ्ग्रामस्य सुखदुःखहेतुत्वाद्विधानमिति ॥

अथ परिभावना—

परिभावोऽद्भुतावेश

१. ‘नाथ, पुनरपि त्वयाहमागत्य समाश्वासयितव्या ।’ इति च्छाया.

यथा रत्नावल्याम्—‘सागरिका—(दृष्ट्वा सविस्मयम् ।) कथं पञ्चक्खो जेव अणङ्को पूअं पडिच्छेदिता । अहंपि इध ट्ठिद जेव णं पूजइस्सम् ।’ इत्यनेन वत्सराजस्यानङ्गरूपतयापह्नुवादनङ्गस्य च प्रत्यक्षस्य पूजाग्रहणस्य लोकोत्तरत्वादद्भुतरसावेशः परिभावना ।

यथा च वेणीसंहारे—‘द्रौपदी—किं दाणिं एसो पलअजलधरत्थणि-दमंसलो खणे खणे समरदुन्दुभी ताडीयदि ।’ इति लोकोत्तरसमरदुन्दु-भिध्वनेर्विस्मयरसावेशाद्रौपद्याः परिभावना ॥

अथोद्भेदः—

### उद्भेदो गूढभेदनम् ।

यथा रत्नावल्यां वत्सराजस्य कुसुमायुधव्यपदेशगूढस्य वैतालिकवचसा ‘अ-स्तापास्त—’ इत्यादिना ‘उदयनस्य—’ इत्यन्तेन बीजानुगुण्येनैवोद्भेदनादुद्भेदः ।

यथा च वेणीसंहारे—‘आर्य, किमिदानीमध्यवस्यति गुरुः ।’ इत्युपक्रमे (‘नेपथ्ये ।)

यत्तत्पत्रतभङ्गभीरुमनसा यत्नेन मन्दीकृतं

यद्विस्मर्तुमपीहितं शमवता शान्तिं कुलस्येच्छता ।

तद्व्यतारणिसंभृतं नृपसुताकेशाम्बराकर्षणैः

क्रोधज्योतिरिदं महत्कुरुवने यौधिष्ठिरं जृम्भते ॥

भीमः—(सहर्षम् ।) जृम्भतां जृम्भतां संप्रत्यप्रतिहतमार्यस्य क्रोध-ज्योतिः ।’ इत्यनेन छन्नस्य द्रौपदीकेशसंयमनहेतोर्युधिष्ठिरक्रोधस्योद्भेद-नादुद्भेदः ॥

अथ करणम्—

### करणं प्रकृतारम्भो

यथा रत्नावल्याम्—‘गौमो दे कुसुमाउह, ता अमोहदंमणो मे भवि-स्ससि त्ति । दिट्ठं जं पेक्खिदव्वम् । ता जाव ण को वि मं पेक्खइ ता गमिस्सम् ।’ इत्यनेनानन्तराङ्गप्रकृतनिर्विघ्नदर्शनारम्भणात्करणम् ।

१. ‘कथं प्रत्यक्ष एवानङ्गः पूजां प्रतिच्छेदिता । अहमपीहस्थितैर्नैनं पूजयिष्यामि ।’ इति च्छाया. २. ‘किमिदानीमेष प्रलयजलधरस्तनितमांसलः क्षणे क्षणे समरदुन्दुभिस्ताड्य-ते ।’ इति च्छाया. ३. ‘नमस्ते कुसुमायुध, तदमोघदर्शनो मे भविष्यसीति । दृष्टं यत्प्रे-क्षितव्यम् । तथावन्न कोऽपि मां प्रेक्षते तद्गमिष्यामि ।’ इति च्छाया.



यथा च वेणीसंहारे—‘तत्पाञ्चालि, गच्छामो वयमिदानीं कुरुकुलश-  
याय’ इति । सहदेवः—‘आर्य, गच्छाम इदानीं गुरुजनानुज्ञाता विक्र-  
मानुरूपमाचरितुम् ।’ इत्यनेनानन्तराङ्कप्रस्तूयमानसङ्ग्रामारम्भणात्करणमिति ।  
सर्वत्र चेहोद्देशप्रतिनिर्देशवैषम्यं क्रियाक्रमस्याविवक्षितत्वादिति ॥

अथ भेदः—

भेदः प्रोत्साहना मता ॥ २९ ॥

यथा वेणीसंहारे—‘णाथ, मा खलु जण्णसेणीपरिभवोदीपितकोपा अनवेक्षितशरीराः परिक्रमिष्यस्य । जदो अप्पमत्तसंचरणीयाइं सुणीयन्ति रि-  
उबलाइं । भीमः—अयि सुक्षत्रिये,

अन्योन्याम्फाल्गुभिन्नद्विपरुधिरवसासान्द्रमस्तिष्कपङ्के

मग्नानां स्यन्दनानामुपरिकृतपदन्यासविक्रान्तपत्तौ ।

स्फीतासृक्पानगोष्ठीरसदशिवशिवातूर्यनृत्यत्कबन्धे

सङ्ग्रामैकार्णवान्तःपयसि विचरितुं पण्डिताः पाण्डुपुत्राः ॥’

इत्यनेन विपण्णाया द्वौपद्याः क्रोधोत्साहबीजानुगुण्येनैव प्रोत्साहनाद्भेद इति ॥

एतानि च द्वादशमुखाङ्गानि बीजारम्भद्योतकानि साक्षात्पारम्पर्येण  
वा विधेयानि । एतेषामुपक्षेपपरिकरपरिन्यासयुक्तयुद्भेदसमाधानानामवश्यं  
भावितेति ॥

अथ साङ्गं प्रतिमुखसंधिमाह—

लक्ष्यालक्ष्यतयोद्भेदस्तस्य प्रतिमुखं भवेत् ।

बिन्दुप्रयत्नानुगमादङ्गान्यस्य त्रयोदश ॥ ३० ॥

तस्य बीजस्य किंचिल्लक्ष्यः किंचिदलक्ष्य इवोद्भेदः प्रकाशनं तत्प्रतिमु-  
खम् । यथा रत्नावल्यां द्वितीयेऽङ्के वत्सराजसागरिकासमागमहेतोरनुरागबी-  
जस्य प्रथमाङ्कोपक्षिप्तस्य सुसङ्गताविदूषकाम्यां ज्ञायमानतया किंचिल्लक्ष्यस्य  
वासवदत्तया च चित्रफलकवृत्तान्तेन किंचिदुन्नीयमानस्य दृश्यादृश्यरूप-  
तयोद्भेदः प्रतिमुखसंधिरिति ।

वेणीसंहारेऽपि द्वितीयेऽङ्के भीष्मादिवधेन किंचिल्लक्ष्यस्य कर्णाद्यवधा-  
च्चाक्ष्यस्य क्रोधबीजस्योद्भेदः

१. ‘नाथ, मा खलु याज्ञसेनीपरिभवोदीपितकोपा अनवेक्षितशरीराः परिक्रमिष्यस्य ।  
यतोऽप्रमत्तसंचरणीयानि श्रूयन्ते रिपुबलानि ।’ इति च्छाया. २. ‘लक्ष्यालक्ष्य इवो-  
द्भेदः’ इति पाठः.

‘सहभृत्यगणं सबान्धवं सहमित्रं ससुतं सहानुजम् ।

स्वबलेन निहन्ति संयुगे न चिरात्पाण्डुसुतः सुयोधनम् ॥’

इत्यादिभिः

‘दुःशासनस्य हृदयक्षतजाम्बुपाने

दुर्योधनस्य च यथा गदयोरुभङ्गे ।

तेजस्विनां समरमूर्धनि पाण्डवानां

ज्ञेया जयद्रथवधेऽपि तथा प्रतिज्ञा ॥’

इत्येवमादिभिश्चोद्भेदः प्रतिमुखसंधिरिति ॥

अस्य च पूर्वाङ्कोपक्षिसबिन्दुरूपबीजप्रयत्नार्थानुगतानि त्रयोदशाङ्गानि भवन्ति । तान्याह—

विलासः परिसर्पश्च विधूतं शमनर्मणी ।

नर्मद्युतिः प्रगमनं निरोधः पथुपासनम् ॥ ३१ ॥

वज्रं पुष्पमुपन्यासो वर्णसंहार इत्यपि ।

यथोद्देशं लक्षणमाह—

रैत्यर्थेहा विलासः स्याद्

यथा रत्नावल्याम्—‘सागरिका—हिअअ, पसीद पसीद । किं इमिणा आआसमेत्तफलेण दुल्लहजणप्पत्थणाणुबन्धेण ।’ इत्युपक्रमे ‘तँहावि आलेखगदं तं जणं कदुअ जधासमीहिदं करिस्सम् । तहावि तस्स णत्थि अण्णो दंसणोवाउत्ति ।’ इत्येतैर्वत्सराजसमागमरतिं चित्रादिजन्यामप्युद्दिश्य सागरिकायाश्चेष्टाप्रयत्नोऽनुरागबीजानुगतो विलास इति ॥

अथ परिसर्पः—

दृष्टनष्टानुसर्पणम् ॥ ३२ ॥

परिसर्पो

यथा वेणीसंहारे—‘कञ्चुकी—योऽयमुद्यतेषु बलवत्सु, अथवा किं बलवत्सु, वासुदेवसहायेष्वरिष्वद्याप्यन्तःपुरसुखमनुभवति । इदमपरमयथातथं स्वामिनः ।

१. ‘प्रगमणम्’ इति पाठः. २. ‘रैत्यर्थेहा’ इति पाठः. ३. ‘हृदय, प्रसीद प्रसीद । किमेनेनायासमात्रफलेन दुर्लभजनप्रार्थनानुबन्धेन ।’ इति च्छाया. ४. ‘तथा-प्यालेखगतं तं जणं कृत्वा यथासमीहितं करिष्यामि । तथापि तस्य नास्त्यन्यो दर्शनोपाय इति ।’ इति च्छाया.

आशस्त्रग्रहणादकुण्ठपरशोस्तस्यापि जेता मुने-

स्तापायास्य न पाण्डुसूनुभिरयं भीष्मः शरैः शायितः ।

प्रौढानेकधनुर्धरारिविजयश्रान्तस्य चैकाकिनो

बालस्यायमरातिलूनधनुषः प्रीतोऽभिमन्योर्वधात् ॥'

इत्यनेन भीष्मादिवधे दृष्टस्याभिमन्युवधान्नष्टस्य बलवतां पाण्डवानां वासुदेवस-  
हायानां सङ्ग्रामलक्षणबिन्दु बीजप्रयत्नान्वयेन कञ्चुकिसुरेन बीजानुसर्पणं परि-  
सर्प इति ।

यथा च रत्नावल्यां सारिकावचनचित्रदर्शनाभ्यां सागरिकानुरागबीजस्य  
दृष्टनष्टस्य 'कासौ कासौ' इत्यादिना वत्सराजेनानुसरणात्परिसर्प इति ॥

अथ विधूतम्—

विधूतं स्यादरतिस

यथा रत्नावल्याम्—'सागरिका—संहि, अहिअं मे संतापो बाधेदि ।  
(सुसङ्गता दीधिकातो नलिनीदलानि मृणालिकाश्यानीयास्या अङ्गे ददाति ।) साग-  
रिका—(तानि क्षिपन्ती ।) संहि, अवणेहि एटाइं । किं अआरणे अत्ताणं  
आयासेसि । णं भणामि ।

दुल्लहजणाणुराओ लज्जा गरुई परव्वसो अप्पा ।

पिअसहि विसमं पेम्मं मरणं सरणं णवर एक्कम् ॥'

इत्यनेन सागरिकाया बीजान्वयेन शीतोपचारविधूननाद्विधूतम् ।

यथा च वेणीसंहारे भानुमत्या दुःस्वप्नदर्शनेन दुर्योधनस्यानिष्टशङ्कया  
पाण्डवविजयशङ्कया वा रतेर्विधूननमिति ॥

अथ शमः—

तच्छमः शमः ।

तस्या अरतेरुपशमः शमः । यथा रत्नावल्याम्—'राजा—वयस्य,  
अनया लिखितोऽहमिति यत्सत्यमात्मन्यपि मे बहुमानस्तत्कथं न पश्यामि ।'  
इति प्रक्रमे 'सागरिका—(आत्मगतम् ।) हिअअ, समस्सस । मनोरहो वि-  
दे एत्तिअं भूमिं ण गदो ।' इति किञ्चिदरत्युपशमाच्छम इति ॥

१. 'सखि, अधिकं मे संतापो बाधते ।' इति च्छाया. २. 'सखि, अपनयैतानि ।  
किमकारण आत्मानमायासयसि । ननु भणामि ।

दुर्लभजनानुरागो लज्जा गुर्वी परवश आत्मा ।

प्रियसखि विषमं प्रेम मरणं शरणं केवलमेकम् ॥' इति च्छाया.

३. 'हृदय, समाश्वसिहि । मनोरथोऽपि त एतावतीं भूमिं न गतः ।' इति च्छाया.

अथ नर्म—

परिहासवचो नर्म

यथा रत्नावल्याम्—‘सुसङ्गता—संहि, जस्स कए तुमं आअदा सो अअं पुरदो चिद्धदि । सागरिका—(सासूयम् ।) सुसङ्गदे, कस्स कए अहं आअदा । सुसङ्गता—अइ अप्पसङ्किदे, णं चित्तफलअस्स । ता गेण्ह एदम् ।’ इत्यनेन बीजान्वितं परिहासवचनं नर्म ।

यथा च वेणीसंहारे—‘(दुर्गोधनोऽतीहन्ताऽर्घपात्रमाशय देव्याः समर्पयति । पुनः) भानुमती—(अर्घं दत्वा ।) हँला, उवणेहि मे कुसुमाइं जाव अवरा- णं पि देवाणं सवरिअं णिवत्तेमि । (हस्तौ प्रसारयति । दुर्गोधनः पुष्पाण्युपनयति । भानुमत्यास्तस्पर्शजातकम्पाया हन्तादुष्पाणि पतन्ति ।)’ इत्यनेन नर्मणा दुःस्वप्न- दर्शनोपशमार्थं देवतापूजाविघ्नकारिणा बीजोद्धाटनात्परिहासस्य प्रतिमुखा- झत्वं युक्तमिति ॥

अथ नर्मद्युतिः—

धृतिस्तज्जा द्युतिर्मता ॥ ३३ ॥

यथा रत्नावल्याम्—‘सुसङ्गता—संहि, अदिणिदुरा दाणिं सि तुमम् । जा एवं पि भट्ठिणा हत्थावलम्बिदा कोवं ण मुच्चसि । सागरिका—(मन्त्रमन्त्रीपद्विहस्य ।) सुसङ्गदे, दाणिं पि ण विरमसि ।’ इत्यनेनानुरागबी- जोद्धाटनान्वयेन धृतिनर्मजा द्युतिरिति दर्शितमिति ॥

अथ प्रगमनम्—

उत्तरा वाक्प्रगमनं

यथा रत्नावल्याम्—‘विदूषकः—‘भो वअस्स, दिट्ठिआ वड्डसे । राजा—(सकौतुकम् ।) वयस्स, किमेतत् । विदूषकः—‘भो, एदं कखु

१. ‘सखि, यस्य कृते त्वमागता सोऽयं पुरतस्तिष्ठति ।’ इति च्छाया. २. ‘सुसङ्गते, कस्य कृतेऽहमागता ।’ इति च्छाया. ३. अयि आत्मशङ्किने, ननु चित्रफलकस्य । तद्गृहाणै- तत् ।’ इति च्छाया. ४. ‘हला, उपनय मे कुसुमानि यावदपरेषामपि देवानां सपर्यां निवर्तयामि ।’ इति च्छाया. ५. संहि, अग्निनिष्ठुरशानीमगि त्वम् । यैवमपि भर्त्रा हस्ता- वलम्बिता कोपं न मुच्चसि ।’ इति च्छाया. ६. ‘सुसङ्गते, इदानीमपि न विरमसि ।’ इति च्छाया. ७. ‘प्रगयणम्’ इति पाठः. ८. ‘भो वयस्य, दिष्ट्या वर्धसे ।’ इति च्छाया. ९. ‘भोः, एतत्खलु तवन्मया भणितं त्वमेवाल्लिखितः । कोऽन्यः कुसुमायुधव्यपदेशेन निद्वयते ।’ इति च्छाया.

तं जं मए भणिदं तुमं एव्व आलिहिदो । को अण्णो कुसुमाउहव्ववदेसेण  
णिण्हवीअदि ।' इत्यादिना

‘परिच्युतस्तत्कुचकुम्भमध्यात्किं शोषमायामि मृणालहार ।

न सूक्ष्मतन्तोरपि तावकस्य तत्रावकाशो भवतः किमु स्यात् ॥’

इत्यनेन राजविदूषकसागरिकासुसङ्गतानामन्योन्यवचनेनोत्तरोत्तरानुरागबी-  
जोद्धाटनात्प्रगमनमिति ॥

अथ निरोधः—

हितरोधो निरोधनम् ।

यथा रत्नावल्याम्—‘राजा—धिङ् मूर्ख,

प्राप्ता कथमपि दैवात्कण्ठमनीतैव सा प्रकटरागा ।

रत्नावलीव कान्ता मम हस्ताङ्गशिंता भवता ॥’

इत्यनेन वत्सराजस्य सागरिकासमागमरूपहितस्य वामवद्वनाप्रवेशमन्त्रकेन  
विदूषकवचसा निरोधान्निरोधनमिति ॥

अथ पर्युपासनम्—

पर्युपास्तिरनुनयः

यथा रत्नावल्याम्—‘राजा—

प्रसीदिति ब्रूयामिदमसति कोपे न घटते

करिष्याम्येवं नो पुनरिति भवेदभ्युपगमः ।

न मे दोषोऽस्तीति त्वमिदमपि हि ज्ञास्यसि मृषा

किमेतस्मिन्वक्तुं क्षममिति न वेद्मि प्रियतमे ॥’

इत्यनेन चित्रगतयोर्नायकयोर्दर्शनात्कुपिताया वासवदत्ताया अनुनयनं ना-  
यकयोरनुरागोद्धाटनवयेन पर्युपासनमिति ॥

अथ पुष्पम्—

पुष्पं वाक्यं विशेषवत् ॥ ३४ ॥

यथा रत्नावल्याम्—‘(राजा सागरिकां हस्ते गृहीत्वा स्पर्शं नाटयति ।) वि-  
दूषकः—‘भो, एसा अपुव्वा सिरी तए समासादिदा । राजा—वयस्य,  
सत्यम् ।

१. ‘भोः, एषापूर्वा श्रीस्त्वया समासादिता ।’ इति च्छाया.

श्रीरेषा पाणिरप्यस्याः पारिजातस्य पल्लवः ।

कुतोऽन्यथा स्ववत्येष स्वेदच्छन्नामृतद्रवम् ॥'

इत्यनेन नायकयोः साक्षादन्योन्यदर्शनादिना सविशेषानुरागोद्धाटनात्पुष्पम्॥

अथोपन्यासः—

**उपन्यासस्तु सोपायं**

यथा रत्नावल्याम्—'सुसङ्गता—भेट्टा, अलं सङ्काए । मए वि भ-  
ट्टिणो पसाएण कीलिदं एव्व । ता किं कण्णाभरणेण । अदो वि मे ग-  
रुओ पसाओ, जं कीस तए अहं एत्थ आलिहिअ त्ति कुविआ मे पिअ-  
सही साअरिआ । ता पसादीअदु ।' इत्यनेन सुसङ्गतावचसा सागरिका  
मया लिखिता सागरिकया च त्वमिति सूचयता प्रसादोपन्यासेन बीजोद्दे-  
दादुपन्यास इति ॥

अथ वज्रम्—

**वज्रं प्रत्यक्षनिष्ठुरम् ।**

यथा रत्नावल्याम्—'वासवदत्ता—(फलकं निर्दिश्य ।) अज्जउत्त, ए-  
सावि जा तुह समीवे, एदं किं वसन्तअस्स विण्णाणम् ।' पुनः 'अज्जउत्त,  
ममावि एदं चित्तकम्म पेक्खन्तीए सीसवेअणा समुप्पण्णा ।' इत्यनेन वासव-  
दत्तया वत्सराजस्य सागरिकानुरागोद्देदनात्प्रत्यक्षनिष्ठुराभिधानं वज्रमिति ॥

अथ वर्णसंहारः—

**चातुर्वर्ण्योपगमनं वर्णसंहार इष्यते ॥ ३५ ॥**

यथा वीरचरिते तृतीयेऽङ्के—

'परिषदियमृषीणामेष वृद्धो युधाजि-

त्सह नृपतिरमात्यैर्लोमपादश्च वृद्धः ।

अयमविरतयज्ञो ब्रह्मवादी पुराणः

प्रभुरपि जनकानामद्भुहो याचकास्ते ॥'

१. 'प्रसादनमुपन्यासः' इति पाठः. २. 'भर्तः, अलं शङ्कया । मयापि भर्तुः प्र-  
सादेन कीडितमेव । तर्त्तिक कर्णाभरणेन । असावपि मे गुरुः प्रसादः, यत्कथं त्वयाहमत्रा-  
लिखितेति कुपिता मे प्रियसखी सागरिका । तत्प्रसाद्यताम् ।' इति च्छाया. ३. 'आ-  
र्यपुत्र, एषापि या तव समीपे, एतर्त्तिक वसन्तकस्य विज्ञानम् ।' इति च्छाया. ४. आर्य-  
पुत्र, ममाप्येतच्चित्रकर्म पश्यन्त्याः शीर्षवेदना समुत्पन्ना ।' इति च्छाया. ५. 'चा-  
तुर्वर्ण्यो' इति पाठः.

इत्यनेन ऋषिक्षत्रियामात्यादीनां संगतानां वर्णानां वचसा रामविजयाशंसिनः परशुरामदुर्णयस्याद्रोहयाच्चाद्वारेणोद्धेदनाद्वर्णसंहार इति ॥

एतानि च त्रयोदश प्रतिमुखाङ्गानि मुखसंध्युपक्षिप्तविन्दुलक्षणावान्तरबीजमहाबीजप्रयत्नानुमतानि विधेयानि । एतेषां च मध्ये परिसर्पप्रशमवज्रोपन्यासपुष्पाणां प्राधान्यम् । इतरेषां यथासंभवं प्रयोग इति ॥

अथ गर्भसंधिमाह—

गर्भस्तु दृष्टनष्टस्य बीजस्यान्वेषणं मुहुः ।

द्वादशाङ्गः पताका स्यान्न वा स्यात्प्राप्तिर्संभवः ॥ ३६ ॥

प्रतिमुखसंधौ लक्ष्यालक्ष्यरूपतया स्तोकोद्भिन्नस्य बीजस्य सविशेषोद्धेदपूर्वकः सान्तरायो लाभः पुनर्विच्छेदः पुनः प्राप्तिः पुनर्विच्छेदः पुनश्च तस्यैवान्वेषणं वारंवारं सोऽनिर्धारितैकान्तफलप्राप्त्याशात्मको गर्भसंधिरिति । तत्र चौत्सर्गिकत्वेन प्राप्तायाः पताकाया अनियमं दर्शयति—‘पताका स्यान्न वा’ इत्यनेन । प्राप्तिर्संभवस्तु स्यादेवेति दर्शयति—‘स्यात्’ इति । यथा रत्नावल्यां तृतीयेऽङ्के वत्सराजस्य वासवदत्तालक्षणापायेन तद्वेपपरिग्रहसागरिकाभिसरणोपायेन च विदूषकवचसा सागरिकाप्राप्त्याशा प्रथमं पुनर्वासवदत्तया विच्छेदः पुनः प्राप्तिः पुनर्विच्छेदः पुनरपायनिवारणोपायान्वेषणं ‘नास्ति देवीप्रसादनं मुक्त्वान्य उपायः’ इत्यनेन दर्शितमिति ॥

स च द्वादशाङ्गो भवति । तान्युद्दिशति—

अभूताहरणं मार्गो रूपोदाहरणे क्रमः ।

संग्रहश्चानुमानं च तोटकाधिबले तथा ॥ ३७ ॥

उद्देगसंभ्रमाक्षेपा लक्षणं च प्रणीयते ।

यथोद्देशं लक्षणमाह—

अभूताहरणं छद्म

यथा रत्नावल्याम्—‘साधु रे अमच्च वसन्तअ, साधु । अदिसइदो तए अमच्चो जोगन्धराअणो इमाए संधिविग्गहचिन्ताए ।’ इत्यादिना प्रवेशकेन गृहीतवासवदत्तावेषायाः सागरिकाया वत्सराजाभिसरणं छद्म विदूषकमुसङ्गताकृतकाञ्चनमालानुवादद्वारेण दर्शितमित्यभूताहरणम् ॥

१. ‘साधु रे अमाय वसन्तक, साधु । अतिशयितस्त्वयामात्यो यौगंधरायणोऽनय संधिविग्रहचिन्तया ।’ इति च्छाया.

अथ मार्गः—

मार्गस्तत्त्वार्थकीर्तनम् ॥ ३८ ॥

यथा रत्नावल्याम्—‘विदूषकः—दिद्विआ वद्वसि समीहिद्वभयिकाए  
कज्जमिद्वीए । राजा—वयस्य, कुशलं प्रियायाः । विदूषकः—अइरेण  
सअं जेव्व पेक्खिअ जाणिहिसि । राजा—दर्शनमपि भविष्यति । विदू-  
षकः—(सगर्वम् ।) कैस ण भविस्सदि, जस्स दे उवहसिदविहप्फदिवु-  
द्धिविहवो अहं अमच्चो । राजा—तथापि कथमिति श्रोनुमिच्छामि ।  
विदूषकः—(कर्णे कथयति ।) ऐव्वम् ।’ इत्यनेन यथा विदूषकेण साग-  
रिकासमागमः सूचितः, तथैव निश्चितरूपो राज्ञे निवेदित इति तत्त्वार्थ-  
कथनान्मार्ग इति ॥

अथ रूपम्—

रूपं वितर्कवद्वाक्यं

यथा रत्नावल्याम्—‘राजा—अहो, किमपि कामिजनस्य स्वर्गुणी-  
समागमपरिभाविनोऽभिनवं जनं प्रति पक्षपातः । तथाहि ।

प्रणयविशदां दृष्टिं वक्त्रे ददाति न शङ्किता

घटयति घनं कण्ठाश्लेषे रसान्न पयोधरो ।

वदति बहुशो गच्छामीति प्रयत्नभृताप्यहो

रमयतितरां संकेतस्था तथापि हि कामिनी ॥’

कथं चिरयति वसन्तकः । किं नु खलु विदितः स्यादयं वृत्तान्तो देव्याः  
इत्यनेन रत्नावलीसमागमप्राप्त्याशानुगुण्येनैव देवीशङ्कायाश्च चित्तकूटपणितं ॥

अथोदाहरणम्—

सौत्कर्षं स्यादुदाहतिः ।

यथा रत्नावल्याम्—‘विदूषकः—(सहर्षम् ।) ‘ही ही भोः, कोसम्बी-  
रज्जलाहेणावि ण तादिसो वअस्सस्स परितोसो आसि, यादिसो मम सआ-

१. ‘दिद्विआ वधसं समीहिताभ्यधिकया कार्यसिद्ध्या ।’ इति च्छाया. २. ‘अचिरेण  
स्वयमेव प्रेक्ष्य ज्ञास्यसि ।’ इति च्छाया. ३. ‘कथं न भविष्यति, यस्य त उपहसितवृ-  
हस्पतिवुद्धिविभवोऽहममात्यः ।’ इति च्छाया. ४. ‘एवम्’ इति च्छाया. ५. ‘ही  
ही भोः, कौशाम्बीराज्यलाभेनापि न तादृशो वयस्यस्य परितोष आसीत्, यादृशो मम  
सकाशात्प्रियवचने भुत्वा भविष्यतीति तर्कयामि ।’ इति च्छाया.



सादो पिअवअणं सुणिअ भविस्सदि त्ति तक्केमि ।' इत्यनेन रत्नावलीप्राप्ति-  
वार्तापि कौशाम्बीराज्यलाभादतिरिच्यत इत्युत्कर्षाभिधानादुदाहृतिरिति ॥

अथ क्रमः—

**क्रमः संचिन्त्यमानाप्तिर्**

यथा रत्नावल्याम्—'राजा—उपनतप्रियासमागमोत्सवस्यापि मे कि-  
मिदमत्यर्थमुत्ताम्यति चेतः । अथवा ।

तीव्रः स्मरसंतापो न तथादौ बाधते यथासन्ने ।

तपति प्रावृषि सुतरामभ्यर्णजलागमो दिवसः ॥

**विदूषकः—**(आकर्ष्य ।) भोदि सागरिण, एसो पिअवअस्सो तुमं  
जेव उदिसिअ उक्कण्ठाणिठभरं मन्तेदि । ता निवेदेमि से तुहागमणम् ।'  
इत्यनेन वत्सराजस्य गागरिकाममागममभिलषत एव भ्रान्तसागरिकाप्रा-  
प्तिरिति क्रमः ॥

अथ क्रमान्तरं मतभेदेन—

**भावज्ञानमथापरे ॥ ३९ ॥**

यथा रत्नावल्याम्—'राजा—(उपसृत्य ।) प्रिये सागरिके,

शीनांशुमुग्धमुत्पले तव दृशौ पद्मानुकारौ करौ

रम्भागर्भनिभं तवोरुयुगलं बाहू मृणालोपमौ ।

इत्याह्लादकराग्विलाङ्गि रभसान्निःशङ्कमान्निङ्गय मा-

मङ्गानि त्वमनङ्गतापविधुराण्येह्येहि निर्वापय ॥'

इत्यादिना 'इह तदप्यस्त्येव चिन्वाधरे ॥' इत्यन्तेन वासवदत्तया वत्सराज-  
भावस्य ज्ञातत्वात्क्रमान्तरमिति ॥

अथ संग्रहः—

**संग्रहः सामदानोक्तिर्**

यथा रत्नावल्याम्—'साधु वयस्य, साधु । इदं ते पारितोषिकं कटकं  
ददामि ।' इत्याभ्यां सामदानाभ्यां विदूषकस्य सागरिकासमागमकारिणः संग्र-  
हात्संग्रह इति ॥

१. 'भवति सागरिके, एष प्रियवयस्यस्त्वामेवोदिरयोत्कण्ठानिर्भरं मन्त्रयति । तन्निवे-  
दयामि तस्मै तवागमनम् ।' इति च्छाया.

अथानुमानम्—

अभ्यूहो लिङ्गतोऽनुमा ।

यथा रत्नावल्याम्—‘राजा—धिङ् मूर्ख, त्वत्कृत एवायमापत्तिः-  
ऽस्माकमनर्थः । कुतः ।

समारूढा प्रीतिः प्रणयबहुमानात्प्रतिदिनं  
व्यलीकं वीक्ष्येदं कृतमकृतपूर्वं खलु मया ।

प्रिया मुञ्चत्यद्य स्फुटमसहना जीवितमसौ  
प्रकृष्टस्य प्रेम्णः स्खलितमविषह्यं हि भवति ॥

विदूषकः—‘भो वअस्स, वासवदत्ता किं करइस्सदि त्ति ण जाण ।  
सागरिआ उण दुक्करं जीभिम्मदि त्ति तक्केमि ।’ इत्यत्र प्रकृष्टप्रेमस्वत्वात्  
सागरिकानुरागजन्येन वासवदत्ताया मरणाभ्यूहनमनुमानमिति ॥

अथाधिवलम्—

अधिवलमभिसंधिः

यथा रत्नावल्याम्—‘काञ्चनमाला—भेट्टिणि, इअं सा चित्तसा-  
लिआ । ता वसन्तअस्स सण्णं करेमि । (छोटिकां ददाति ।)’ इत्यादिना वास-  
वदत्ताकाञ्चनमालाभ्यां सागरिकासुसङ्गतावेषाभ्यां राजविदूषकयोरभिमंघी-  
यमानत्वादधिवलमिति ॥

अथ तोटकम्—

संरब्धं तोटकं वचः ॥ ४० ॥

यथा रत्नावल्याम्—‘वासवदत्ता—(उपसृत्य ।) अज्जउत्त, जुनं ग  
सरिसमिणम् । (पुनःसरोषम् ।) अज्जउत्त, उट्ठेहि । किं अज्जवि आहि नाईए  
सेवादुक्खमणुभवीअदि । कञ्चणमाले, एदेण ज्जेव पासेण वन्धिअ आणेहि  
एणं दुट्ठकण्णम् । एदं पि दुट्ठकण्णअं अगदो करेहि ।’ इत्यनेन वासवदत्ता-  
संरब्धवचसा सागरिकासमागमान्तरागमनेनाभियन्तामि तागणं तोटकमुक्तम् ॥

यथा च वेणीसंहारे—

‘प्रयत्नपरिवोधितः स्तुतिभिरद्य शेषे निशाम्’

१. ‘भो वयस्य, वासवदत्ता किं करिष्यतीति न जानामि । सागरिका पुनर्दुष्करं जी-  
विष्यतीति तर्कयामि ।’ इति च्छाया. २. ‘भद्रि, इयं सा चित्रशालिका ।  
तद्वसन्तकस्य संज्ञां करोमि ।’ इति च्छाया. ३. ‘आर्यपुत्र, युक्तमिदं सदृशमिदम् ।  
आर्यपुत्र, उत्तिष्ठ । किमद्याप्याभिजात्याः सेवादुःखमनुभूयते । काञ्चनमाले, एतेनैव  
पाशेन बद्धानयैर्न दुष्टब्राह्मणम् । एतामपि दुष्टकन्यकामग्रतः कुरु ।’ इति च्छाया.

इत्यादिना

‘धृतायुधो यावदहं तावदन्यैः किमायुधैः ।’

इत्यन्तेनान्योन्यं कर्णाश्चत्वाञ्चोः संरब्धवचसा सेनाभेदकारिणा पाण्डवविजयप्राप्त्याशान्वितं तोटकमिति ॥

ग्रन्थान्तरे तु—

तोटकस्यान्यथाभावं ब्रुवतेऽधिवलं बुधाः ।

यथा रत्नावल्याम्—‘राजा—देवि, एवमपि प्रत्यक्षदृष्टव्यलीकः किं विज्ञापयामि ।

आताम्रतामपनयामि विलक्ष एव

लाक्षाकृतां चरणयोज्ज्वल देवि मूर्ध्ना ।

कोपोपगमजनितां तु मुखेन्दुबिम्बे

हर्तुं क्षमो यदि परं करुणा मयि स्यात् ॥’

संरब्धवचनं यत्तु तोटकं तदुदाहृतम् ॥ ४१ ॥

यथा रत्नावल्याम्—‘राजा—प्रिये वासवदत्ते, प्रसीद प्रसीद । वासवदत्ता—(अधुना धाम्यन्ता ।) अज्जउत्त, मा एव भण । अण्णमङ्गुत्तां खु एदाइं अक्खराइं त्ति ।’

यथा च वेणीसंहारे—‘राजा—अये मुन्दरक, कञ्चिन्कुशलमङ्गराजस्य । पुरुषः—कुशलं सरीरमेतत्केण । राजा—किं त्वय किरीटिना हता भीरयाः, क्षत्तः सारथिः, भग्नो वा रथः । पुरुषः—देव, ण भग्गो रहो । भग्गो से मणोरहो । राजा—(ससंभ्रमम् ।) कथम् ।’ इत्येवमादिना संरब्धवचसा तोटकमिति ॥

अथोद्वेगः—

उद्वेगोऽरिकृता भीतिः

यथा रत्नावल्याम्—‘सागरिका—(आत्मगतम् ।) केहं अहिदपुण्णोहिं अत्तणो इच्छाए मरिउं पि ण पारीअदि ।’ इत्यनेन वासवदत्तातः सागरिकाया भयमित्युद्वेगः । यो हि यस्यापकारी स तस्यारिः ।

१. ‘आर्यपुत्र, मैवं भण । अन्यसंक्रान्तानि खल्वेतान्यक्षराणीति ।’ इति च्छाया.
२. ‘कुशलं शरीरमात्रकेण ।’ इति च्छाया. ३. ‘देव, न भग्गो रथः । भग्गोऽस्य मनोरथः ।’ इति च्छाया. ४. ‘कथमकृतपुण्यैरात्मन इच्छया मर्तुमपि न पार्यते ।’ इति च्छाया.

यथा च वेणीसंहारे—‘सूतः—(धृत्वा सभयम् ।) कथमासन्न एवासौ कौ-  
रवराजपुत्रमहावनोत्पातमारुतो मारुतिरनुपलब्धसंज्ञश्च महाराजः । भवतु ।  
दूरमपहरामि स्यन्दनम् । कदाचिदयमनार्यो दुःशासन इवास्मिन्नप्यनार्यमा-  
चरिष्यति ।’ इत्यरिकृता भीतिरुद्वेगः ॥

अथ संभ्रमः—

शङ्कात्रासौ च संभ्रमः ।

यथा रत्नावल्याम्—‘विदूषकः—(पश्यन् ।) का उण एसा । (ससंभ्र-  
मम् ।) कथं देवी वासवदत्ता अत्ताणं वावादेदि । राजा—(ससंभ्रममुपसर्पन् ।)  
कासौ कासौ ।’ इत्यनेन वासवदत्ताबुद्धिगृहीतायाः सागरिकाया मरणश-  
ङ्कया संभ्रम इति ।

यथा च वेणीसंहारे—(नेपथ्ये कलकलः ।) अभ्युत्थामा—(ससंभ्रमम् ।)  
मातुल, मातुल, कष्टम् । एष भ्रातुः प्रतिज्ञाभङ्गभीरुः किरीटी समं शरवर्षैर्दु-  
र्योधनराधेयावभिद्रवति । सर्वथा पीतं शोणितं दुःशासनस्य भीमेन ।’ इति  
शङ्का । तथा ‘(प्रविश्य संभ्रान्तः सप्रहारः) सूतः—त्रायतां त्रायतां कुमारः ।’  
इति त्रासः । इत्येताभ्यां त्रासशङ्काभ्यां दुःशासनद्रोणवधसूचकाभ्यां  
पाण्डवविजयप्राप्त्याशान्वितः संभ्रम इति ॥

अथाक्षेपः—

गर्भबीजसमुद्भेदादाक्षेपः परिकीर्तितः ॥ ४२ ॥

यथा रत्नावल्याम्—‘राजा—वयस्य, देवीप्रसादनं मुक्त्वा नान्य-  
त्रोपायं पश्यामि ।’ पुनः क्रमान्तरे ‘सर्वथा देवीप्रसादनं प्रति निष्प्रत्याशी-  
भूताः स्मः ।’ पुनः ‘तत्किमिह स्थितेन देवीमेव गत्वा प्रसादयामि ।’ इत्यनेन  
देवीप्रसादायत्ता सागरिकासमागमसिद्धिरिति गर्भबीजोद्भेदादाक्षेपः ।

यथा च वेणीसंहारे—‘सुन्दरकः—अहवा किमेत्थ देवं उआलहामि ।  
तस्स कखु एदं णिब्भच्छिदविदुरवअणबीअस्स परिभूदपिदामहहिदोवदेस-

१. ‘का पुनरेषा । कथं देवी वासवदत्तात्मानं व्यापादयति ।’ इति च्छाया. २. ‘अ-  
थवा किमत्र दैवमुपालभामि । तस्य खल्वेतन्निर्भर्तितसत्विदुरवचनबीजस्य परिभूतपिताम-  
हहितोपदेशाङ्कुरस्य शकुनिप्रोत्साहनारूढमूलस्य कूटविषशाखिनो गात्रादीकेगमहणकुमु-  
मस्य फलं परिणमति ।’ इति च्छाया.

ङ्कुरस्स सउणिप्पोच्छाहणारूढमूलस्स कूडविममाहिणो पञ्चालीकेसग्गहणकु-  
सुमस्स फलं परिणमेदि ।' इत्यनेन बीजमेव फलोन्मुखतयाक्षिप्यत इत्याक्षेपः ।

एतानि द्वादश गर्भाङ्गानि प्राप्त्याशाप्रदर्शकत्वेनोपनिबन्धनीयानि । एषां  
च मध्येऽभूताहरणमार्गतोटाधिवलाक्षेपाणां प्राधान्यम् । इतरेषां यथासंभवं  
प्रयोग इति साङ्गो गर्भसंधिरुक्तः ।

अथावमर्शः—

क्रोधेनावमृशेद्यत्र व्यसनाद्वा विलोभनात् ।

गर्भनिर्भिन्नबीजार्थः सोऽवमर्शोऽङ्गसंग्रहः ॥ ४३ ॥

अवमर्शनमवमर्शः पर्यालोचनम् । तच्च क्रोधेन वा व्यसनाद्वा विलोभनेन वा  
भवितव्यम् । अनेनार्थेनेत्यवधारितैकान्तफलप्राप्त्यवसायात्मा गर्भसंध्युद्भिन्नबी-  
जार्थसंबन्धो विमर्शोऽवमर्शः । यथा रत्नावल्यां चतुर्थेऽङ्केऽग्निविद्रवपर्यन्तो  
गामादनाप्रभक्त्या निरपायरत्नावलीप्राप्त्यवसायात्मा विमर्शो दर्शितः ।

यथा च वेणीमंहारे दुर्योधनरुधिराक्तभीमसेनागमपर्यन्तः

‘तीर्णं भीष्ममहोदधौ कथमपि द्रोणानले निर्वृते

कर्णाशीविषभोगिनि प्रशमिते शल्येऽपि याते दिवम् ।

भीमेन प्रियसाहसेन रभसादल्पावशेषे जये

सर्वे जीवितसंशयं वयममी वाचा समारोपिताः ॥’

इत्यत्र ‘म्वल्पावशेषे जये’ इत्यादिभिर्विजयप्रत्यर्थिसमस्तभीष्मादिमहारथवधा-  
द्वधारितैकान्तविजयावमर्शनादवमर्शनं दर्शितमित्यवमर्शसंधिः ।

तस्याङ्गसंग्रहमाह—

तत्रापवादसंफेटौ विद्रवद्रवशक्तयः ।

द्युतिः प्रसङ्गश्छलनं व्यवसायो विरोधनम् ॥ ४४ ॥

प्ररोचना विचलनमादानं च त्रयोदश ।

यथोद्देशं लक्षणमाह—

दोषप्रख्यापवादः स्यात्

यथा रत्नावल्याम्—‘सुसङ्गता—सा खु तवस्सिणी भट्टिणीए उज्ज-  
इणि णीअदित्ति पवादं करिअ उवत्थिदे अद्धरत्ते ण जाणीअदि कहिं पि  
णीदेत्ति । विदूषकः—(सोद्वेगम् ।) अदिणिग्गिणं वखु कदं देवीए ।’ पुनः ।  
‘भो<sup>३</sup> वअस्य, मा खु अण्णधा संभावेहि । सा खु देवीए उज्जइणीं  
पेसिदा । अदो अप्पिअं त्ति कहिदम् । राजा—अहो निरनुरोधा मयि  
देवी ।’ इत्यनेन वासवदत्तादोषप्रख्यापनादपवादः ।

यथा च वेणीसंहारे—‘युधिष्ठिरः—पाञ्चालक, कच्चिदामादिना तस्य  
दुरात्मनः कौरवापसदस्य पदवी । पाञ्चालकः—न केवलं पदवी । स  
एव दुरात्मा देवीकेशपाशस्पर्शपातकप्रधानहेतुरूपलब्धः ।’ इति दुर्योधनस्य  
दोषप्रख्यापनादपवाद इति ।

अथ संफेटः—

### संफेटो रोषभाषणम् ।

यथा वेणीसंहारे—‘भोः कौरवराज, कृतं बन्धुनाशदर्शनमन्युना । एवं  
विषादं कृथाः । पर्याप्ताः पाण्डवाः समरायाहमसहाय इति ।

पञ्चानां मन्यसेऽस्माकं यं सुयोधं सुयोधन ।

दंशितस्यात्तशस्त्रस्य तेन तेऽस्तु रणोत्सवः ॥

इत्थं श्रुत्वासूयात्मिकां निक्षिप्य कुमारयोर्दृष्टिमुक्तवान्धार्तराष्ट्रः—

कर्णदुःशासनवधात्तुल्यवेव युवां मम ।

अप्रियोऽपि प्रियो योद्धुं त्वमेव प्रियसाहसः ॥

इत्युत्थाय च परस्परक्रोधाधिक्षेपपरुषवाक्कलहप्रस्तावितयोरसङ्ग्रामौ—’ इत्य-  
नेन भीमदुर्योधनयोरन्योन्यरोषसंभाषणाद्विजयबीजान्वयेन संफेट इति ।

अथ विद्रवः—

### विद्रवो वधबन्धादिर्

१. ‘सा खलु तपस्विनी भट्टिन्योजयिनीं नीयत इति प्रवादं कृत्वोपस्थितेऽर्धरात्रे न  
ज्ञायते कुत्रापि नीतेति ।’ इति च्छाया. २. ‘अतिनिर्घृणं खलु कृतं देव्या ।’ इति च्छाया.  
३. भो वयस्य, मा खल्वन्यथा संभावय । सा खलु देव्योजयिन्यां प्रेषिता । अतोऽप्रि-  
र्यामिति कथितम् ।’ इति च्छाया.

यथा छलितरामे—

‘येनावृत्य मुखानि साम पठतामत्यन्तमायासितं  
बाल्ये येन हृताक्षसूत्रवलयप्रत्यर्पणैः क्रीडितम् ।  
युष्माकं हृदयं स एष विशिखैरापूरितांसस्थलो  
मूर्च्छाभोग्नमःप्रवेशविवशो बद्धा लवो नीयते ॥’

यथा च रत्नावल्याम्—

‘हर्म्याणां हेमशृङ्गश्रियमिव शिखरैरचिषामादधानः  
सान्द्रोद्यानद्रुमाग्रग्लपनपिशुनितात्यन्ततीव्राभितापः ।  
कुर्वन्क्रीडामहीध्रं सजलजलधरस्यामलं धूमपातै-  
रेष ह्योषार्तयोषिज्जन इह सहसैवोत्थितोऽन्तःपुरेऽग्निः ॥’

इत्यादि। पुनः । ‘वासवदत्ता—अज्जउत्त, ण क्खु अहं अत्तणो कार-  
णादो भणामि । एसा मए णिग्घिणहिअआए संजदा सागरिआ विवज्जदि ।’  
इत्यनेन सागरिकावधवन्धाग्निभिर्विद्रव इति ।

अथ द्रवः—

द्रवो गुरुतिरस्कृतिः ॥ ४५ ॥

यथोत्तरचरिते—

‘वृद्धास्ते न विचारणीयचरितास्तिष्ठन्तु हुं वर्तते  
सुन्दस्त्रीदमनेऽप्यखण्डयशसो लोके महान्तो हि ते ।  
यानि त्रीण्यकुतोमुखान्यपि पदान्यासन्खरायोधने  
यद्वा कौशलमिन्द्रसूनुदमने तत्राप्यभिज्ञो जनः ॥’

इत्यनेन लवो रामस्य गुरोस्तिरस्कारं कृतवानिति द्रवः ।

यथा च वेणीसंहारे—‘युधिष्ठिरः—भगवन् कृष्णाग्रज सुभद्राभ्रातः,  
ज्ञातिप्रीतिर्मनसि न कृता क्षत्रियाणां न धर्मो  
रूढं सख्यं तदपि गणितं नानुजस्यार्जुनेन ।  
तुल्यः कामं भवतु भवतः शिष्ययोः स्नेहबन्धः  
कोऽयं पन्था यदसि विगुणो मन्दभाग्ये मयीत्यम् ॥’

१. ‘आर्यपुत्र, न खल्वहमात्मनः कारणाद्गणामि । एषा मया निर्घृणहृदयया संयता  
सागरिका विपद्यते ।’ इति च्छाया.

इत्यादिना बलभद्रं गुरुं युधिष्ठिरस्तिरस्कृतवानिति द्रवः ।

अथ शक्तिः—

विरोधशमनं शक्तिम्

यथा रत्नावल्याम्—‘राजा—

सव्याजैः शपथैः प्रियेण वचसा चित्तानुवृत्त्याधिकं

वैलक्ष्येण परेण पादपतनैर्वाक्यैः सखीनां मुहुः ।

प्रत्यासत्तिमुपागता न हि तथा देवी रुदत्या यथा

प्रक्षाल्यैव तयैव बाष्पसलिलैः कोपोऽपनीतः स्वयम् ॥’

इत्यनेन सागरिकालाभविरोधिवासवदत्ताकोपोपशमनाच्छक्तिः ।

यथा चोत्तरचरिते लवः प्राह—

‘विरोधो विश्रान्तः प्रसरति रसो निर्वृतिघन-

स्तदौद्धत्यं कापि व्रजति विनयः प्रह्वयति माम् ।

अटित्यम्बिन्दष्टे किमपि परवानस्मि यदि वा

महार्घस्तीर्थानामिव हि महतां कोऽप्यतिशयः ॥’

अथ द्युतिः—

तर्जनोद्वेजने द्युतिः ।

यथा वेर्णामंहारे—‘एतच्च वचनमुपश्रुत्य रामानुजस्य सकलनिकुञ्जपूरि  
ताशातिरिक्तमुद्भ्रान्तसलिलचरशतसंकुलं त्रासोद्वृत्तनक्रग्राहमालोड्य सरःम-  
लिलं भैरवं च गर्जित्वा कुमारवृकोदरेणाभिहितम् ।

जन्मेन्दोरमले कुले व्यपदिशस्यद्यापि धत्से गदां

मां दुःशासनकोष्णशोणितमुराक्षीवं रिपुं भाषसे ।

दर्पान्धो मधुकैटभद्विषि हरावप्युद्धतं चेष्टसे

मन्त्रासानृपशो विहाय समरं पङ्केऽधुना लीयसे ॥’

इत्यादिना ‘त्यक्त्वोत्थितः सरभसम्’ इत्यनेन दुर्वचनजलावलोडनाभ्यां  
दुर्योधनतर्जनोद्वेजनकारिभ्यां पाण्डवविजयानुकूलदुर्योधनोत्थापनहेतुभ्यां  
भीमस्य द्युतिरुक्ता ।

अथ प्रसङ्गः—

गुरुकीर्तनं प्रसङ्गश्च



यथा रत्नावल्याम्—‘देव, यासौ सिंहलेश्वरेण स्वदुहिता रत्नावली नामा-  
युष्मती वासवदत्तां दग्धामुपश्रुत्य देवाय पूर्वप्रार्थिता सती प्रतिदत्ता ।’ इ-  
त्यनेन रत्नावल्या लाभानुकूलाभिननप्रकाशिना प्रसङ्गाद्गुरुकीर्तनेन प्रसङ्गः ।

तथा मृच्छकटिकायाम्—‘चाण्डालकः—एष सागलदत्तस्य सुओ  
अज्जविणअदत्तस्स णत्तु चालुदत्तो वावादिदुं वज्जट्ठाणं णीअदि । एदेण  
किल गणिआ वसन्तसेणा सुवण्णलोभेण वावादिदुं त्ति । चारुदत्तः—

मखशतपरिपूतं गोत्रमुद्भासितं य-

त्सदसि निविडचैत्यब्रह्मघोषैः पुरस्तात् ।

मम निधनदशायां वर्तमानस्य पापै-

स्तदसदृशमनुष्यैर्घुप्यते गोपणायाम् ॥’

इत्यनेन चारुदत्तवधाम्बुदयानुकूलं प्रसङ्गाद्गुरुकीर्तनमिति प्रसङ्गः ।

अथ छलनम्—

छलनं चावमाननम् ॥ ४६ ॥

यथा रत्नावल्याम्—‘राजा—अहो निरनुरोधा मयि देवी ।’ इत्यनेन  
वासवदत्तयेष्टाभं पादनाद्वत्सराजस्यावमाननाच्छलनम् ।

यथा च रामाभ्युदये सीतायाः गगन्यागेनावमाननाच्छलनमिति ।

अथ व्यवसायः—

व्यवसायः स्वशक्त्युक्तिः

यथा रत्नावल्याम्—‘ऐन्द्रजालिकः—

किं धरणीए मिअङ्को आआसे महिहरो जले जलणो ।

मज्झण्हम्मि पओसो दाविज्जउ देहि आणत्तिम् ॥

अहवा किं बहुणा जम्पिण्ण ।

१. ‘एष सागरदत्तस्य सुत आर्यविनयदत्तस्य नत्ता चारुदत्तो व्यापादयितुं वध्यस्थानं  
नीयते । एतेन किल गणिका वसन्तसेना सुवर्णलोभेन व्यापादितेति ।’ इति च्छाया.

२. ‘किं धरण्यां मृगाङ्क आकाशे महीधरो जले ज्वलनः ।

मध्याह्ने प्रदोषो दर्शयतां देव्याङ्गसिम् ॥

अथवा किं बहुना जल्पितेन ।

मम प्रतिज्ञैषा भणामि हृदयेन यद्वाञ्छसि द्रष्टुम् ।

तत्ते दर्शयामि स्फुटं गुरोर्मन्त्रप्रभावेण ॥’ इति च्छाया.

मज्झ पङ्णा एसा भणामि हिअएण जं महसि दट्ठुम् ।

तं ते दावेमि फुडं गुरुणो मन्तप्पहावेण ॥'

इत्यनेनैन्द्रजालिको मिथ्याग्निसंभ्रमोत्थापनेन वत्सराजस्य हृदयस्थसाग-  
रिकादर्शनानुकूलां स्वशक्तिमाविष्कृतवान् ।

यथा च वेणीसंहारे—

‘नूनं तेनाद्य वीरेण प्रतिज्ञाभङ्गभीरुणा ।

बध्यते केशपाशस्ते स चास्याकर्षणे क्षमः ॥’

इत्यनेन युधिष्ठिरः स्वदण्डशक्तिमाविष्करोति ।

अथ विरोधनम्—

‘संरब्धानां विरोधनम् ।

यथा वेणीसंहारे—‘राजा—रे रे मरुत्तनय, किमेवं वृद्धस्य राज्ञः  
पुरतो निन्दितव्यमात्मकर्म स्थावसे । अपि च ।

कृष्टा केशेषु भार्या तव तव च पशोस्तस्य राज्ञस्तयोर्वा

प्रत्यक्षं भूपतीनां मम भुवनपतेराज्ञया द्यूतदासी ।

अस्मिन्वैरानुबन्धे तव किमपकृतं तैर्हता ये नरेन्द्रा

बाह्वोर्वीर्यातिसारद्रविणगुरुमदं मामजित्वैव दर्पः ॥

(भीमः क्रोधं नाटयति ।) अर्जुनः—आर्य, प्रसीद । किमत्र क्रोधेन ।

अप्रियाणि करोत्येष वाचा शक्तो न कर्मणा ।

हतभ्रातृशतो दुःखी प्रलापैरस्य का व्यथा ॥

भीमः—अरे भरतकुलकलङ्क,

अद्यैव किं न विसृजेयमहं भवन्तं

दुःशासनानुगमनाय कटुप्रलापिन् ।

विघ्नं गुरू न कुरुतो यदि मत्कराग्र-

निर्भिद्यमानरणिताम्भिनि ते शरीरे ॥

अन्यच्च मूढ,

शोकं स्त्रीवन्नयनसलिलैर्यत्परित्याजितोऽसि  
भ्रातुर्वक्षःस्थलविदलने यच्च माक्षीकृतोऽसि ।  
आसीदेतत्तव कुनृपतेः कारणं जीवितस्य  
क्रुद्धे युष्मत्कुलकमलिनीकुञ्जरे भीमसेने ॥

राजा—दुरात्मन् भरतकुलापसद पाण्डवपशो, नाहं भवानिव विक-  
त्थनाप्रगल्भः । किं तु ।

द्रक्ष्यन्ति न चिरात्सुप्तं बान्धवास्त्वां रणाङ्गणे ।  
मद्गदाभिन्नवक्षोऽस्थिवेणिकाभङ्गभीषणम् ॥'

इत्यादिना संरब्धयोर्भीमदुर्योधनयोः स्वशक्त्युक्तिर्विरोधनमिति ।

अथ प्ररोचना—

सिद्धामन्नगतो भाविदर्शिका स्यात्प्ररोचना ॥ ४७ ॥

यथा वेणीसंहारे—'पाञ्चालकः—अहं च देवेन चक्रपाणिना' इत्युप-  
क्रम्य 'कृतं संदेहेन ।

पूर्यन्तां सलिलेन रत्नकलशा राज्याभिषेकाय ते  
कृष्णात्यन्तचिरोज्जिते च कबरीबन्धे करोतु क्षणम् ।

रामे शातकुठारभासुरकरे क्षत्रद्रुमोच्छेदिनि

क्रोधान्धे च वृकोदरे परिपतत्याजौ कुतः संशयः ॥'

इत्यादिना 'मङ्गलानि कर्तुमाज्ञापयति देवो युधिष्ठिरः।' इत्यन्तेन द्रौपदीके-  
शसंयमनयुधिष्ठिरराज्याभिषेकयोर्भाविनोरपि सिद्धत्वेन दर्शिका प्ररोचनेति ।

अथ विचलनम्—

विकत्थना विचलनम्

यथा वेणीसंहारे—'भीमः—तात, अम्ब,

सकलरिपुजयाशा यत्र बद्धा सुतैस्ते

तृणमिव परिभूतो यस्य गर्वेण लोकः ।

रणशिरसि निहन्ता तस्य राधासुतस्य

प्रणमति पितरौ वां मध्यमः पाण्डवोऽयम् ॥

अपि च । तात,

नृणिनाशेपकौग्न्यः क्षीबो दुःशामनामृजा ।

भङ्गा नुगोधनस्योर्वोर्भीमोऽयं शिरसाञ्चति ॥'

इत्यनेन विजयबीजानुगतस्वगुणाविष्करणाद्विचलनमिति ।

यथा च रत्नावल्याम्—'यौगंधरायणः—

देव्या मद्वचनाद्यथाभ्युपगतः पत्युर्वियोगस्तदा

सा देवस्य कलत्रसंघटनया दुःखं मया स्थापिता ।

तस्याः प्रीतिमयं करिष्यति जगत्स्वामित्वलाभः प्रभोः

सत्यं दर्शयितुं तथापि वदनं शक्नोमि नो लज्जया ॥'

इत्यनेनान्यपरेणापि यौगंधरायणेन 'मया जगत्स्वामित्वानुबन्धी कन्यायामो वत्सराजस्य कृतः ।' इति स्वगुणानुकीर्तनाद्विचलनमिति ।

अथादानम्—

आदानं कार्यसंग्रहः ।

यथा वेणीसंहारे—'भीमः—ननु भोः समन्तपञ्चकसंचारिणः,

रक्षो नाहं न भूतं रिपुरुधिरजलाप्लाविताङ्गः प्रकामं

निस्तीर्णोरुप्रतिज्ञाजलनिधिगहनः क्रोधनः क्षत्रियोऽस्मि ।

भो भो राजन्यवीराः समरशिखिशिन्वाद्भयशेषाः कृतं व-

खासेनानेन लीनैर्हतकरितुरगान्तर्हितैरास्यते यत् ॥'

इत्यनेन समस्तरिपुवधकार्यस्य संगृहीतत्वादादानम् ।

यथा च रत्नावल्याम्—'सागरिका—(दिशोऽवलोक्य ।) दिदृष्ट्वा सम-  
न्तादो पज्जलिदो भवं हुअवहो अज्ज करिस्सदि दुक्खावसानम् ।' इत्यनेना-  
न्यपरेणापि दुःखावसानकार्यस्य संग्रहादादानम् । यथा च 'जगत्स्वामित्व-  
लाभः प्रभोः' इति दर्शितमेवम् । इत्येतानि त्रयोदशवमर्शोङ्गानि । तत्रैते-  
षामपवादशक्तिव्यवसायप्ररोचनादानानि प्रधानानीति ।

अथ निर्वहणसंधिः—

बीजवन्तो सुखाद्यर्था विप्रकीर्णा यथायथम् ॥ ४८ ॥

ऐकार्थ्यमुपनीयन्ते यत्र निर्वहणं हि तत् ।

१. 'दिष्ट्वा समन्तात्पज्जलितो भगवान्हुतवहोऽद्य करिष्यति दुःखावसानम् ।' इति  
च्छाया.

यथा वेणीसंहारे—‘कञ्जुकी—(उपसृख सहर्षम् ।) महाराज, वर्धसे वर्धसे । अयं खलु कुमारभीमसेनः सुयोधनक्षतजारुणीकृतसकलशरीरो दुर्लक्षव्यक्तिः ।’ इत्यादिना द्रौपदीकेशसंयमनादिमुखसंध्यादिबीजानां निजनिजस्थानोपक्षिप्तानामेकार्थतया योजनम् ।

यथा च रत्नावल्यां सागरिकारत्नावलीवसुभूतिवाभ्रव्यादीनामर्थानां मुखसंध्यादिषु प्रकीर्णानां वत्सराजैकार्थित्वम् ‘वसुभूतिः—(सागरिकां निर्वर्ण्यार्थम् ।) बाभ्रव्य, सुसदृशीयं राजपुत्र्या ।’ इत्यादिना दर्शितमिति निर्वहणसंधिः ।

अथ तदङ्गानि—

संधिविवोधो ग्रथनं निर्णयः परिभाषणम् ॥ ४९ ॥

प्रसादानन्दसमयाः कृतिभाषोपगूहनाः ।

पूर्वभावोपसंहारौ प्रशस्तिश्च चतुर्दश ॥ ५० ॥

यथोद्देशं लक्षणमाह—

संधिबीजोपगमनं

यथा रत्नावल्याम्—‘वसुभूतिः—बाभ्रव्य, सुसदृशीयं राजपुत्र्या । बाभ्रव्यः—ममाप्येवमेव प्रतिभाति ।’ इत्यनेन नायिकाबीजोपगमात्संधिरिति ।

यथा च वेणीसंहारे—‘भीमः—भवति यज्ञवेदिसंभवे, स्मरति भवती यत्तन्मयोक्तम् ।

चञ्चद्भुजभ्रमितचण्डगदाभिघात-

संचूर्णितोरुयुगलस्य सुयोधनस्य ।

स्याना १३३ नशोणिनशोणपाणि-

रुत्तंसयिष्यति कचांस्तव देवि भीमः ॥’

इत्यनेन मुखोपक्षिप्तस्य बीजस्य पुनरुपगमात्संधिरिति ।

अथ विबोधः—

विबोधः कार्यमार्गणम् ।

यथा रत्नावल्याम्—‘वसुभूतिः—(निरूप्य ।) देव, कुत इयं कन्यका । राजा—देवी जानाति । वासवदत्ता—अज्जउत्त, एसा सागरादो पावि-

१. ‘आर्यपुत्र, एसा सागरात्प्राप्तेति भणित्वा मात्ययौगंधरायणेन मम हस्ते निहिता । अत एव सागरिकेति शब्दते ।’ इति च्छाया.

अत्ति भणिअ अमच्चजोगन्धराअणेण मम हत्थे णिहिदा । अदो ज्जेव सा-  
गरिअत्ति सदावीअदि । राजा—(आत्मगतम् ।) यौगंधरायणेन न्यस्ता ।  
कथमसौ ममानिवेद्य करिष्यति ।' इत्यनेन रत्नावलीलक्षणकार्यान्वेषणाद्विवोधः ।

यथा च वेणीसंहारे—'भीमः—मुञ्चतु मुञ्चतु मामार्यः क्षणमेकम् ।  
युधिष्ठिरः—किमपरमवशिष्टम् । भीमः—सुमहदवशिष्टम् । संयमयामि  
तावदनेन दुःशासनशोणितोक्षितेन पाणिना पाञ्चाल्या दुःशासनावकृष्टं  
केशहस्तम् । युधिष्ठिरः—गच्छतु भवान् । अनुभवतु तपस्विनी वेणीसं-  
हारम् ।' इत्यनेन केशसंयमनकार्यस्यान्वेषणाद्विवोध इति ।

अथ ग्रथनम्—

ग्रथनं तदुपक्षेपो

यथा रत्नावल्याम्—'यौगंधरायणः—देव, क्षम्यतां यद्देवस्यानिवेद्य  
मयैतत्कृतम् ।' इत्यनेन वत्सराजस्य रत्नावलीप्रापणकार्योपक्षेपाद्ग्रथनम् ।

यथा च वेणीसंहारे—'भीमः—पाञ्चालि, न खलु मयि जीवति सं-  
हर्तव्या दुःशासनविलुलिता वेणिरात्मपाणिना । तिष्ठतु तिष्ठतु । स्वयमेवाहं  
संहारामि ।' इत्यनेन द्रौपदीकेशसंयमनकार्यस्योपक्षेपाद्ग्रथनम् ।

अथ निर्णयः—

ऽनुभूताख्या तु निर्णयः ॥ ५१ ॥

यथा रत्नावल्याम्—'यौगंधरायणः—(कृताञ्जलिः ।) देव, श्रूयताम् ।  
इयं सिंहलेश्वरदुहिता सिद्धादेशेनोपदिष्टा, योऽस्याः पाणिग्रहीष्यति स सा-  
र्वभौमो राजा भविष्यति । तत्प्रत्ययादस्माभिः स्वाम्यर्थे बहुशः प्रार्थ्यमा-  
नापि सिंहलेश्वरेण देव्या वासवदत्तायाश्चित्तस्वेदं परिहरता यदा न दत्ता,  
तदा लावणिके देवी दग्धेति प्रसिद्धिमुत्पाद्य तदन्तिकं बाभ्रव्यः प्रहितः ।'  
इत्यनेन यौगंधरायणः स्वानुभूतमर्थं ख्यापितवानिति निर्णयः ।

यथा च वेणीसंहारे—'भीमः—देव देव अजातशत्रो, काद्यापि दुर्यो-  
धनहतकः । मया हि तस्य दुरात्मनः

भूमौ सिद्ध्वा शरीरं निहितमिदमसृक्चन्दनाभं निजाङ्गे  
लक्ष्मीरार्ये निषिक्ता चतुरुदधिपयःसीमया सार्धमुर्व्या ।

भृत्या मित्राणि योधाः कुरुकुलमखिलं दग्धमेतद्रणाग्रौ  
नामैकं यद्वीषि क्षितिप तदधुना भार्तराष्ट्रस्य शेषम् ॥'  
इत्यनेन स्वानुभूतार्थकथनान्निर्णय इति ।

अथ परिभाषणम्—

**परिभाषा मिथो जल्पः**

यथा रत्नावल्याम्—‘रत्नावली—(आत्मगतम् ।) कैआवराहा देवीए  
ण सकुणोमि मुहं दंसिदुम् । वासवदत्ता—(साक्षम् । पुनर्वाहू प्रसार्य ।)  
एहि अयि णिष्ठुरे, इदानीं पि बन्धुसिण्हं दंसेहि । (अपवार्य ।) अज्जउत्त,  
लज्जामि क्खु अहं इमिणा णिसंसत्तणेण । ता लहुं अवणेहिसे बन्धणम् ।  
राजा—यथाह देवी । (बन्धनमपनयति ।) वासवदत्ता—(वसुभूतिं निर्दि-  
श्य ।) अज्ज, अमच्चयोगन्धरायणेण दुज्जणीकदस्सि जेण जाणन्तेण वि  
णाचक्खिदम् ।’ इत्यनेनान्योन्यवचनात्परिभाषणम् ।

यथा च वेणीसंहारे—‘भीमः—कृष्टा येनासि राज्ञां सदसि नृपशुना  
तेन दुःशासनेन ।’ इत्यादिना ‘कासौ भानुमती योपहसति पाण्डवदा-  
रान् ।’ इत्यन्तेन भाषणात्परिभाषणम् ।

अथ प्रसादः—

**प्रसादः पर्युपासनम् ।**

यथा रत्नावल्याम्—‘देव, क्षम्यताम् ।’ इत्यादि दर्शितम् ।

यथा च वेणीसंहारे—‘भीमः—(द्रौपदीमुपसृत्य ।) देवि पाञ्चालराज-  
तनये, दिष्ट्या वर्षसे रिपुकुलक्षयेन ।’ इत्यनेन द्रौपद्या भीमसेनेनाराधितत्वा-  
त्प्रसाद इति ।

अथानन्दः—

**आनन्दो वाञ्छितावाप्तिः**

यथा रत्नावल्याम्—‘राजा—यथाह देवी । (रत्नावलीं गृह्णाति ।)’

१. ‘कृतापराधा देव्या न शक्नोमि मुखं दर्शयितुम् ।’ इति च्छाया. २. ‘एहि  
अयि निष्ठुरे, इदानीमपि बन्धुसिंहं दर्शय । आर्यपुत्र, लजे खल्वहमनेन नृशंसत्वेन ।  
तल्लवपनयास्या बन्धनम् ।’ इति च्छाया. ३. ‘आर्य, अमात्ययौगंधरायणेन दुर्जनी-  
कृतास्मि येन जानतापि नाचक्षितम् ।’ इति च्छाया.

यथा च वेणीसंहारे—‘द्रौपदी—‘णाध, विमुमरिदक्षि एदं वावाग्म ।  
णाधस्स प्पसादेण पुणो सिक्खिस्सम् । (केशान्वध्नाति ।)’ इत्याभ्यां प्राप्तिं रत्नाव-  
लीप्राप्तिकेशसंयमनयोर्वत्सराजद्रौपदीभ्यां प्राप्तत्वादानन्दः ।

अथ समयः—

समयो दुःखनिर्गमः ॥ ५२ ॥

यथा रत्नावल्याम्—‘वासवदत्ता—(रत्नावलीमालिङ्ग्य ।) सैमस्स सम-  
स्सस बहिणिण् ।’ इत्यनेन भगिन्योरन्योन्यसमागमेन दुःखनिर्गमात्समयः ।

यथा च वेणीसंहारे—‘भगवन्, कुतस्तस्य विजयादन्यद्यस्य भगवा-  
न्पुराणपुरुषः स्वयमेव नारायणो मङ्गलान्याशास्ते ।

कृतगुरुमहदादिशोभसंभूतमूर्तिं

गुणिनमुदयनाशस्थानहेतुं प्रजानाम् ।

अजममरमचिन्त्यं चिन्तयित्वापि न त्वां

भवति जगति दुःखी किं पुनर्देव दृष्ट्वा ॥’

इत्यनेन युधिष्ठिरदुःखापगमं दर्शयति ।

अथ कृतिः—

कृतिर्लब्धार्थशमनं

यथा रत्नावल्याम्—‘राजा—को देव्याः प्रसादं न बहु मयते ।  
वासवदत्ता—‘अज्जउत्त, दूरे से मादुउलम् । ता तथा करेसु जथा बन्धु-  
अणं न सुमरेदि ।’ इत्यन्योन्यवचसा लब्धायां रत्नावल्यां राज्ञः सुश्लिष्ट्य  
उपशमनात्कृतिरिति ।

यथा च वेणीसंहारे—‘कृष्णः—एते खलु भगवन्तो व्यामवाल्मीकि—  
इत्यादिना ‘अभिषेकमारब्धवन्तस्तिष्ठन्ति ।’ इत्यनेन प्राप्तराज्यस्याभिषे-  
कमङ्गलैः स्थिरीकरणं कृतिः ।

अथ भाषणम्—

मानाद्यामिश्र भाषणम् ।

१. ‘नाथ, विस्मृतास्म्येतं व्यापारम् । नाथस्य प्रसादेन पुनः शिक्षिष्यामि ।’ इति  
च्छाया. २. ‘समाश्वसिहि समाश्वसिहि भगिनिके ।’ इति च्छाया. ३. ‘आर्यपुत्र,  
दूरेऽस्या मातृकुलम् । तत्तथा कुरुष्व यथा वन्धुजनं न स्मरति ।’ इति च्छाया.



यथा रत्नावल्याम्—‘राजा—अतःपरमपि प्रियमस्ति ।

यातो विक्रमबाहुरात्मसमतां प्राप्तेयमुर्वीतले

सारं सागरिका ससागरमहीप्राप्त्येकहेतुः प्रिया ।

देवी प्रीतिमुपागता च भगिनीलाभाज्जिताः कोशलाः

किं नास्ति त्वयि सत्यमात्यवृषभे यस्मै करोमि स्पृहाम् ॥’

इत्यनेन कामार्थमानादिलाभाद्भाषणमिति ।

अथ पूर्वभावोपगूहने—

कार्यदृष्ट्यद्भुतप्राप्ती पूर्वभावोपगूहने ॥ ५३ ॥

कार्यदर्शने पूर्वभावः । यथा रत्नावल्याम्—‘यौगंधरायणः—एवं विज्ञाय भगिन्याः संप्रति करणीये देवी प्रमाणम् । वासवदत्ता—कुडं ज्ञेयं किं न भणसि । पडिवाएहि से रअणमालं ति ।’ इत्यनेन ‘वत्सराजाय रत्नावली दीयताम् ।’ इति कार्यस्य यौगंधरायणाभिप्रायानुप्रविष्टस्य वासवदत्तया दर्शनात्पूर्वभाव इति ।

अद्भुतप्राप्तिरुपगूहनम् । यथा वेणीसंहारे—(नेपथ्ये ।) महासमरानल-दग्धशेषाय स्वस्ति भवते राजन्यलोकाय ।

क्रोधान्धैर्यस्य मोक्षात्क्षतनरपतिभिः पाण्डुपुत्रैः कृतानि

प्रत्याशं मुक्तकेशान्यनुदिनमधुना पार्थिवान्तःपुराणि ।

कृष्णायाः केशपाशः कुपितयमसखो धूमकेतुः कुरुणां

दिष्ट्या बद्धः प्रजानां विरमतु निधनं स्वस्ति राजन्यकेभ्यः ॥

युधिष्ठिरः—देवि, एष ते मूर्धजानां संहारोऽभिनन्दितो नभस्तलच-  
रिणा सिद्धजनेन ।’ इत्येतेनाद्भुतार्थप्राप्तिरुपगूहनमिति । लब्धार्थशमनात्कृ-  
तिरपि भवति ।

अथ काव्यसंहारः—

वरासिः काव्यसंहारः

यथा—‘किं ते भूयः प्रियमुपकरोमि ।’ इत्यनेन काव्यार्थसंहरणात्का-  
व्यसंहार इति ।

१. ‘स्फुटमेव किं न भणसि । प्रतिपादयास्मै रत्नमालामिति ।’ इति च्छाया.

अथ प्रशस्तिः—

प्रशस्तिः शुभशंसनम् ।

यथा वेणीसंहारे—‘प्रीततरश्चेद्भवान्, तदिदमेवमस्तु ।

अकृपणमतिः कामं जीव्याज्जनः पुरुषायुषं

भवतु भगवद्भक्तिर्द्वैतं विना पुरुषोत्तमे ।

कलितभुवनो विद्वद्बन्धुर्गुणेषु विशेषवि-

त्सततसुकृती भूयाद्भूपः प्रसाधिनमण्ड ॥’

इति शुभशंसनात्प्रशस्तिः । इत्येतानि चतुर्दश निर्वहणाङ्गानि । एवं  
चतुःपञ्चदशमन्त्रिणाः पञ्चसंध्यः प्रतिपादिताः ।

षट्प्रकारं चाङ्गानां प्रयोजनमित्याह—

उक्ताङ्गानां चतुःषष्टिः षोढा चैषां प्रयोजनम् ॥ ५४ ॥

कानि पुनस्तानि षट्प्रयोजनानि—

इष्टस्यार्थस्य रचना गोप्यगुप्तिः प्रकाशनम् ।

रागः प्रयोगस्याश्चर्यं वृत्तान्तस्यानुपक्षयः ॥ ५५ ॥

विवक्षितार्थनिवन्धनं गोप्यार्थगोपनं प्रकाशयार्थप्रकाशनमभिनेयरागवृ-  
द्धिश्चमत्कारित्वं च काव्यस्येतिवृत्तस्य विस्तर इत्यङ्गैः षट्प्रयोजनानि सं-  
पाद्यन्त इति ।

पुनर्वस्तुविभागमाह—

द्वेधा विभागः कर्तव्यः सर्वस्यापीह वस्तुनः ।

सूच्यमेव भवेत्किंचिद्दृश्यश्रव्यमथापरम् ॥ ५६ ॥

कीदृक्सूच्यं कीदृगदृश्यश्रव्यमित्याह—

नीरसोऽनुचितस्तत्र संसूच्यो वस्तुविस्तरः ।

दृश्यस्तु मधुरोदात्तरसभावनिरन्तरः ॥ ५७ ॥

सूच्यस्य प्रतिपादनप्रकारमाह—

अर्थोपक्षेपकैः सूच्यं पञ्चभिः प्रतिपादयेत् ।

विष्कम्भचूलिकाङ्गास्याङ्गावतारप्रवेशकैः ॥ ५८ ॥

तत्र विष्कम्भः—

वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः ।

संक्षेपार्थस्तु विष्कम्भो मध्यपात्रप्रयोजितः ॥ ५९ ॥

अतीतानां भाविनां च कथावयवानां ज्ञापको मध्यमेन मध्यमाभ्यां वा पात्राभ्यां प्रयोजितो विष्कम्भक इति ।

स द्विविधः—शुद्धः संकीर्णश्चेत्याह—

एकानेककृतः शुद्धः संकीर्णो नीचमध्यमैः ।

एकेन द्वाभ्यां वा मध्यमपात्राभ्यां शुद्धो भवति । मध्यमाधमपात्रैर्यु-  
गपत्प्रयोजितः संकीर्ण इति ।

अथ प्रवेशकः—

तद्वदेवानुदात्तोत्तया नीचपात्रप्रयोजितः ॥ ६० ॥

प्रवेशोऽङ्कद्वयस्यान्तः शेषार्थस्योपसूचकः ।

तद्वदेवेति भूतमविष्यदर्थज्ञापकत्वमतिदिश्यते । अनुदात्तोत्तया नीचेन  
नीचैर्वा पात्रैः प्रयोजित इति विष्कम्भकस्योपपादः । अङ्कद्वयस्यान्त इति  
प्रथमाङ्के प्रतिषेध इति ।

अथ चूलिका—

अन्तर्जवनिकासंस्थैश्चूलिकार्थस्य सूचना ॥ ६१ ॥

नेपथ्यपात्रेणार्थसूचनं चूलिका । यथोत्तरचरिते द्वितीयाङ्कस्यादौ—  
(‘नेपथ्ये १) स्वागतं तपोधनायाः । (ततः प्रविशति तपोधना १) इति नेपथ्य-  
पात्रेण वामन्तिकयात्रेयीसूचनाचूलिका ।

यथा वा वीरचरिते चतुर्थाङ्कस्यादौ—(‘नेपथ्ये १) भो भो वैमानिकाः,  
प्रवर्त्यन्तां प्रवर्त्यन्तां मङ्गलानि ।

कृशाश्वान्तेवासी जयति भगवान्कौशिकमुनिः

सहस्रांशोर्वशे जगति विजयि क्षत्रमधुना ।

विनेता क्षत्रारेर्जगदभयदानव्रतधरः

शरण्यो लोकानां दिनकरकुलेन्दुर्विजयते ॥’

इत्यत्र नेपथ्यपात्रैर्देवै रामेण परशुरामो जित इति सूचनाचूलिका ।

अथाङ्कास्यम्—

अङ्कान्तपात्रैरङ्कास्यं छिन्नाङ्कस्यार्थसूचनात् ।

अङ्कान्त एव पात्रमङ्कान्तपात्रम् । तेन विच्छिष्टस्योत्तराङ्कमुखस्य सूचनं तद्वशेनोत्तराङ्कावतारोऽङ्कास्यमिति । यथा वीरचरिते द्वितीयाङ्कान्ते—  
(प्रविश्य ।) **सुमन्त्रः**—भगवन्तौ वसिष्ठविश्वामित्रौ भवतः सर्भागवानाह-  
यतः । इतरे—क भगवन्तौ । **सुमन्त्रः**—महाराजदशरथस्यान्तिके ।  
इतरे—तदनुरोधात्तत्रैव गच्छामः ।' इत्यङ्कसमाप्तौ '(ततः प्रविशन्त्युपविष्टा  
वसिष्ठविश्वामित्रपरशुरामाः॥)' इत्यत्र पूर्वाङ्कान्त एव प्रविष्टेनसुमन्त्रपात्रेण  
शतानन्दजनककथार्थविच्छेद उत्तराङ्कमुखसूचनादङ्कास्यमिति ।

अथाङ्कावतारः—

अङ्कावतारस्त्वङ्कान्ते पातोऽङ्कस्याविभागतः ॥ ६२ ॥

एभिः संसृचयेत्सूच्यं दृश्यमङ्कैः प्रदर्शयेत् ।

यत्र प्रविष्टपात्रेण सूचितमेव पूर्वाङ्काविच्छिन्नार्थतयैवाङ्कान्तरमापतति  
प्रवेशकविष्कम्भकादिशून्यं सोऽङ्कावतारः । यथा मानविकाशिमित्रे प्रथमा-  
ङ्कान्ते—'विदूषकः—तेणे हि दुवेवि देवीए पेक्खागेहं गदुअ सङ्कीदो-  
वअरणं करिअ तत्थभवदो दूदं विसजेध । अधवा मुदङ्गसदो जेव णं  
उत्थावयिस्सदि।' इत्युपक्रमे मृदङ्गशब्दश्रवणादनन्तरं सर्वाण्येव पात्राणि  
प्रथमाङ्कप्रक्रान्तपात्रसंक्रान्तिदर्शनं द्वितीयाङ्कादावारभन्त इति प्रथमाङ्का-  
र्थाविच्छेदेनैव द्वितीयाङ्कस्यावतरणादङ्कावतार इति ।

पुनस्त्रिधा वस्तुविभागमाह—

नाय्यधर्ममपेक्ष्यैतत्पुनर्वस्तु त्रिधेष्यते ॥ ६३ ॥

केन प्रकारेण त्रैधं तदाह—

सर्वेषां नियतस्यैव श्राव्यमश्राव्यमेव च ।

तत्र ।

सर्वश्राव्यं प्रकाशं स्यादश्राव्यं स्वगतं मतम् ॥ ६४ ॥

सर्वश्राव्यं यद्वस्तु तत्प्रकाशमित्युच्यते । यत्तु सर्वस्याश्राव्यं तत्स्वगत-  
मिति शब्दाभिधेयम् ।

१. 'पात्राङ्कस्य' इति पाठः. २. 'तेन हि द्वावपि देव्याः प्रेक्षागेहं गत्वा संगीतको-  
पकरणं कृत्वा तत्रभवतो दूतं विसर्जयतम् । अथवा मृदङ्गशब्द एवैनमुत्थापयिष्यति ।'  
इति छाया.

नियतश्राव्यमाह—

द्विधान्यन्नाद्यधर्माख्यं जनान्तमपवारितम् ।

अन्यत्तु नियतश्राव्यं द्विप्रकारं जनान्तिकापवारितभेदेन ।

तत्र जनान्तिकमाह—

त्रिपताकाकरेणान्यानपवार्यान्तरा कथाम् ॥ ६५ ॥

अन्योन्यामन्त्रणं यत्स्याज्जनान्ते तज्जनान्तिकम् ।

यस्य न श्राव्यं तस्यान्तर ऊर्ध्वसर्वाङ्गुलं तज्जनान्तिकमिति तत्राणं करं  
कृत्वान्येन सह यन्मन्त्रयते तज्जनान्तिकमिति ।

अथापवारितम्—

रहस्यं कथ्यतेऽन्यस्य परावृत्त्यापवारितम् ॥ ६६ ॥

परावृत्त्यान्यस्य रहस्यकथनमपवारितमिति ।

नाट्यधर्मप्रसङ्गादाकाशभाषितमाह—

किं ब्रवीष्येवमित्यादि विनापात्रं ब्रवीति यत् ।

श्रुत्वेवानुक्तमप्येकस्तस्यादाकाशभाषितम् ॥ ६७ ॥

स्पष्टार्थः ।

अन्यान्यपि नाट्यधर्माणि प्रथमकल्पादीनि कैश्चिदुदाहृतानि । तेषाम-  
भारतीयत्वान्नममालप्रसिद्धानां केषांचिद्देशभाषात्मकत्वान्नाट्यधर्मत्वाभावा-  
लक्षणं नोक्तमित्युपसंहरति—

इत्याद्यशेषमिह वस्तुविभेदजातं

रामायणादि च विभाव्य बृहत्कथां च ।

आसूत्रयेत्तदनु नेतरसानुगुण्या-

चित्रां कथामुचितचारुवचःप्रपञ्चैः ॥ ६८ ॥

वस्तुविभेदजातं वस्तु वर्णनीयं तस्य विभेदजातं नामभेदाः । रामाय-  
णादि बृहत्कथां च गुणाढ्यनिर्मितां विभाव्य आलोच्य । तदनु एतदुत्त-  
रम् । नेत्रिति । नेता वक्ष्यमाणलक्षणः, रसाश्च तेषामानुगुण्याचित्रां चि-  
त्ररूपां कथामारूपायिकाम् । चारूणि यानि वचांसि तेषां प्रपञ्चैर्विस्तरैरा-  
सूत्रयेदनुग्रथयेत् । तत्र बृहत्कथामूलं मुद्राराक्षसम्—

‘चाणक्यनाम्ना तेनाथ शकटालगृहे रहः ।  
 कृत्यां विधाय सहसा सपुत्रो निहतो नृपः ॥  
 योगानन्दयशः शेषे पूर्वनन्दसुतस्ततः ।  
 चन्द्रगुप्तः कृतो राजा चाणक्येन महौजसा ॥’

इति वृहत्कथायां सूचितं श्रीरामायणोक्तं रामकथादि ज्ञेयम् ॥

इति श्रीविष्णुसूनोर्धनिकस्य कृतौ दशरूपावलोक्ये  
 प्रथमः प्रकाशः समाप्तः ।

द्वितीयः प्रकाशः ।

रूपकाणामन्योन्यं भेदसिद्धये वस्तुभेदं प्रतिपादयति नायकभेदः  
प्रतिपाद्यते—

नेता विनीतो मधुरस्त्यागी दक्षः प्रियंवदः ।

रक्तलोकः शुचिर्वाङ्मी रूढवंशः स्थिरो युवा ॥ १ ॥

बुद्धयुत्साहस्मृतिप्रज्ञाकलामानसमन्वितः ।

शूरो दृढश्च तेजस्वी शास्त्रचक्षुश्च धार्मिकः ॥ २ ॥

नेता नायको विनयादिगुणसंपन्नो भवतीति ।

तत्र विनीतः । यथा वीरचरिते—

‘यद्ब्रह्मवादिभिरुपासितवन्द्यपादे

विद्यानपोवननिधौ तपतां वरिष्ठे ।

दैवात्कृतस्त्वयि मया विनयापचार-

स्तत्र प्रसीद भगवन्नयमञ्जलिस्ते ॥’

मधुरः प्रियदर्शनः । यथा तत्रैव—

‘राम राम नयनाभिरामतामाशयस्य सदृशीं समुद्रहन् ।

अप्रतर्क्यगुणरामणीयकः सर्वयैव हृदयंगमोऽसि मे ॥’

त्यागी सर्वस्वदायकः । यथा—

‘त्वचं कर्णः शिबिर्मांसं जीवं जीमूतवाहनः ।

ददौ दधीचिरस्थीनि नास्त्यदेयं महात्मनाम् ॥’

दक्षः क्षिप्रकारी । यथा वीरचरिते—

‘स्फूर्जद्वज्रसहस्रनिर्मितमिव प्रादुर्भवत्यग्रतो

रामस्य त्रिपुरान्तकृद्विषदां तेजोभिरिद्धं धनुः ।

शुण्डारः कलभेन यद्वदचले कत्सेन दोर्दण्डक-

स्तस्मिन्नाहित एव गर्जितगुणं कृष्टं च भयं च तत् ॥’

प्रियंवदः प्रियभाषी । यथा तत्रैव—

‘उत्पत्तिर्जमदग्निः स भगवान्देवः पिनाकी गुरु-

वीर्यं यत्तु न तद्विरां पथि ननु व्यक्तं हि तत्कर्मभिः ।

त्यागः सप्तसमुद्रमुद्रितमहीनिर्व्याजदानावधिः

सत्यब्रह्मतपोनिधेर्भगवतः किं वा न लोकोत्तरम् ॥’

रक्तलोकः । यथा तत्रैव—

‘त्रय्यास्त्राता यस्तवायं तनूज-  
स्तेनाद्यैव स्वामिनस्ते प्रसादात् ।  
राजन्वन्तो रामभद्रेण राज्ञा  
लब्धक्षेमाः पूर्णकामाश्चरामः ॥’

एवं शौचादिष्वप्युदाहार्यम् । तत्र शौचं नाम मनोर्नैर्मल्यादिना कामा-  
द्यनभिभूतत्वम् । यथा रघौ—

‘का त्वं शुभे कस्य परिग्रहो वा किं वा मदभ्यागमकारणं ते ।  
आचक्ष्व मत्वा वशिनां रघूणां मनः परस्त्रीविमुखप्रवृत्ति ॥’

वाञ्छी । यथा हनुमन्नाटके—

‘बाहोर्बलं न विदितं न च कार्मुकस्य  
त्रैयम्बकस्य तनिमा तत एष दोषः ।  
तच्चापलं परशुराम मम क्षमस्व  
डिम्भस्य दुर्विलसितानि मुदे गुरूणाम् ॥’

रूढवंशो यथा—

‘ये चत्वारो दिनकरकुलक्षत्रसंतानमल्ली-  
मालाम्लानस्तबकमधुषा जज्ञिरे राजपुत्राः ।  
रामस्तेषामचरमभवस्ताडकाकालरात्रि-  
प्रत्यूषोऽयं सुचरितकथाकन्दलीमूलकन्दः ॥’

स्थिरो वाङ्मनःक्रियाभिरचञ्चलः । यथा वीरचरिते—

‘प्रायश्चित्तं चरिष्यामि पूज्यानां वो व्यतिक्रमात् ।  
न त्वेव दूषयिष्यामि शस्त्रग्रहमहाव्रतम् ॥’

यथा वा भर्तृहरिशतके—

‘प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः  
प्रारभ्य विघ्नविहता विरमन्ति मध्याः ।  
विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमानाः  
प्रारब्धमुत्तमगुणास्त्वमिवोद्वहन्ति ॥’

युवा प्रसिद्धः । बुद्धिर्ज्ञानम् । गृहीतविशेषकरी तु प्रज्ञा । यथा माल-  
विकाग्निमित्रे—



‘यद्यत्प्रयोगविषये भाविकमुपदिश्यते मया तस्यै ।  
तत्तद्विशेषकरणात्प्रत्युपदिशतीव मे बाला ॥’

स्पष्टमन्यत् ।

नेतृविशेषानाह—

भेदैश्चतुर्धा ललितशान्तोदात्तोद्धतैरयम् ।

यथोद्देशं लक्षणमाह—

निश्चिन्तो धीरललितः कलासक्तः सुखी मृदुः ॥ ३ ॥

सच्चिवादिविहितयोगक्षेमत्वाच्चिन्तारहितः । अत एव गीतादिकलाविष्टो  
भोगप्रवणश्च श्रृङ्गाग्रधानन्वाच्च मुकुमागमत्तानारो मृदुरिति ललितः ।  
यथा रत्नावल्याम्—

‘राज्यं निर्जितशत्रु योग्यसच्चिवे न्यस्तः समस्तो भरः

मभ्यनपाळनञ्जलिनाः प्रशमिताशोपोपमर्णाः प्रजाः ।

प्रद्योतस्य सुता वसन्तसमयस्त्वं चेति नाम्ना धृतिं

कामः काममुपैत्वयं मम पुनर्मन्ये महानुत्सवः ॥’

अथ शान्तः—

सामान्यगुणयुक्तस्तु धीरशान्तो द्विजादिकः ।

विनयादिनेतृसामान्यगुणयोगी धीरशान्तो द्विजादिक इति विप्रवणिक्स-  
चिवादीनां प्रकरणनेतृणामुपलक्षणम् । विवक्षितं चैतत् । तेन नैश्चिन्त्यादि-  
गुणसंभवेऽपि विप्रादीनां शान्ततैव न ललित्यम् । यथा मालनीमाधव-मृन्द-  
कटिकादौ माधव-चारुदत्तादिः ।

‘तत उदयगिरेरिवैक एव

स्फुरितगुणद्युतिसुन्दरः कलावान् ।

इह जगति महोत्सवस्य हेतु-

र्नयनवतामुदियाय बालचन्द्रः ॥’

इत्यादि । यथा वा—

मखशतपरिपूतं गोत्रमुद्भासितं य-

त्सदसि निबिडचैत्यब्रह्मघोषैः पुरस्तात् ।

मम निधनदशायां वर्तमानस्य पापै-

स्तदसदृशमनुष्यैर्धुष्यते घोषणायाम् ॥’

अथ धीरोदात्तः—

महासत्त्वोऽतिगम्भीरः क्षमावानविकत्थनः ॥ ४ ॥

स्थिरो निगूढाहंकारो धीरोदात्तो दृढव्रतः ।

महासत्त्वः शोकक्रोधाद्यनभिभूतान्तःसत्त्वः । अविकत्थनोऽनात्मश्चा-  
वनः । निगूढाहंकारो विनयच्छन्नावलेपः । दृढव्रतोऽङ्गीकृतनिर्वाहको धी-  
रोदात्तः । यथा नागानन्दे—‘जीमूतवाहनः—

शिरामुखैः स्यन्दत एव रक्तमद्यापि देहे मम मांसमस्ति ।

तृप्तिं न पश्यामि तवैव तावत्किं भक्षणात्त्वं विरतो गरुत्मन् ॥’

यथा च रामं प्रति—

‘शाह्नम्याभिषेकाय विसृष्टस्य वनाय च ।

न मया लक्षितस्तस्य स्वल्पोऽप्याकारविभ्रमः ॥’

यच्च केषांचित्स्यैर्यादीनां सामान्यगुणानामपि विशेषलक्षणे क्वचित्संकीर्तनं  
तत्तेषां तत्राधिक्यप्रतिपादनार्थम् । ननु च कथं जीमूतवाहनादिर्नागान-  
न्दादावुदात्त इत्युच्यते । औदात्त्यं हि नाम सर्वोत्कर्षेण वृत्तिः । तच्च  
विजिगीषुत्व एवोपपद्यते । जीमूतवाहनगुणं निर्जिगीषुतयैव कविना प्रति-  
पादितः । यथा—

‘तिष्ठन्भाति पितुः पुरो भुवि यथा सिंहासने किं तथा

यत्संवाहयतः सुखं हि चरणौ तातस्य किं राज्यतः ।

किं भुक्ते भुवनत्रये धृतिरसौ भुक्तोज्झिते या गुरो-

रायासः खलु राज्यमुज्झितगुरोस्तत्रास्ति कश्चिद्गुणः ॥’

इत्यनेन ।

‘पित्रोर्विधातुं शुश्रूषां त्यक्त्वैश्वर्यं क्रमागतम् ।

वनं गाम्यहमग्रेषु यथा जीमूतवाहनः ॥’

इत्यनेन च । अतोऽस्यात्यन्तशमप्रधानत्वात्परमकारुणिकत्वाच्च वीतरागव-  
च्छान्तता । अन्यच्चात्रायुक्तं यन्त्राभूतं राज्यसुखादौ निरभिलाषं नायक-  
मुपादायान्तरा तत्राभूतमल्यवत्यनुरागोपवर्णनम्, यच्चोक्तं सामान्यगुणयोगी  
द्विजादिर्धीरशान्त इति, तदपि पारिभाषिकत्वाद्वास्तवमित्यभेदकम् । अतो  
वस्तुस्थित्या बुद्ध-युधिष्ठिर-जीमूतवाहनादिव्यवहाराः शान्ततामाविर्भावयन्ति ।

अत्रोच्यते—यत्तावदुक्तं सर्वोत्कर्षेण वृत्तिरौदात्त्यमिति, न तज्जीमूतवाहनादौ परिहीयते । न ह्येकरूपैव विजिगीषुता । यः केनापि शौर्यत्यागद्वयादिनान्यानतिशेते स विजिगीषुः, न यः परापकारेणार्थग्रहादिप्रवृत्तः । तथात्वे च मार्गदूषकादेरपि धीरोदात्तत्वप्रसक्तिः । रामादेरपि जगत्पालनीयमिति दुष्टनिग्रहे प्रवृत्तस्य नान्तरीयकत्वेन भूम्यादिलाभः । जीमूतवाहनादिस्तु प्राणैरपि परार्थसंपादनाद्विश्वमप्यतिशेते इत्युदात्ततमः । यथोक्तम्—‘तिष्ठन्भाति—’ इत्यादिना विषयसुखपराञ्जुस्तेति, तत्सत्यम् । कार्पण्यहेतुषु स्वसुखतृष्णासु निरभिलाषा एव जिगीषवः । यदुक्तम्—

‘स्वसुखनिरभिलाषः खिद्यसे लोकहेतोः

प्रतिदिनमथवा ते वृत्तिरेवंविधैव ।

अनुभवति हि मूर्धा पादपस्तीव्रमुष्णं

शमयति परितापं छायायोपाश्रितानाम् ॥’

इत्यादिना मलयवत्यनुरागोपवर्णनं त्वशान्तरसाश्रयं शान्तनायकतां प्रत्युत निषेधति । शान्तत्वं चानहंकृतत्वं तच्च विप्रादेरौचित्यप्राप्तमिति वस्तुस्थित्या विप्रादेः शान्तता न स्वपरिभाषामात्रेण । बुद्धजीमूतवाहनयोस्तु कारुणिकत्वाविशेषेऽपि सकामनिष्कामकरुणत्वादिधर्मत्वाद्भेदः । अतो जीमूतवाहनादर्धोदात्तत्वमिति ।

अथ धीरोद्धतः—

दर्पमात्सर्यभूयिष्ठो मायाछद्मपरायणः ॥ ५ ॥

धीरोद्धतस्त्वहंकारी चलश्चण्डो विकत्थनः ।

दर्पः शौर्यादिमदः । मात्सर्यमसहनता । मन्त्रबलेनाविद्यमानवस्तुप्रकाशनं माया । छद्म वञ्चनामात्रम् । चलोऽनवस्थितश्चण्डो रौद्रः स्वगुणशंसी विकत्थनो धीरोद्धतो भवति । यथा जामदग्न्यः—‘कैयमोद्धारसारत्रिभुवनविजय—’ इत्यादि । यथा च रावणः—‘त्रैलोक्यैश्वर्यरक्ष्मीहठहरणसहा बाहवो रावणस्य ।’

धीरललितादिशब्दाश्च यथोक्तगुणसमारोपितावस्थाभिधायिनो वत्सवृषभमहोक्षादिवन्न जात्या कश्चिदवस्थितरूपो ललितादिरस्ति । तदा हि महाकविप्रबन्धेषु विरुद्धानेकरूपाभिधानमसंगतमेव स्यात्, जातेरनपायित्वात् । तथा च भवभूतिनैक एव जामदग्न्यः—

‘ब्राह्मणातिक्रमत्यागो भवतामेव भूतये ।

जामदग्न्यश्च वो मित्रमन्यथा दुर्मनायते ॥’

इत्यादिना रावणं प्रति धीरोदात्तत्वेन ‘कैलासोद्धारसार—’ इत्यादिभिश्च रामा-  
दीन्प्रति प्रथमं धीरोद्धतत्वेन पुनः ‘पुण्या ब्राह्मणजातिः’ इत्यादिभिश्च  
धीरशान्तत्वेनोपवर्णितः । न चावस्थान्तराभिधानमनुचितमङ्गभूतनायकानां  
नायकान्तरापेक्षया महासत्त्वादेरव्यवस्थितत्वादङ्गिनस्तु रामादेरेकप्रबन्धोपा-  
त्तान्प्रत्येकरूपत्वादारम्भोपात्तावस्थातोऽवस्थान्तरोपादानमन्याध्यम् । यथो-  
दात्तत्वाभिमतस्य रामस्य छान्ना वालिवधादमहासत्त्वतया स्वावस्थापरित्याग  
इति । वक्ष्यमाणानां च दक्षिणाद्यवस्थानां पूर्वा प्रत्यन्ययाहृत इति नित्यभा-  
गेनानेनाभिधानादुपात्तावस्थानोऽवस्थान्तराभिधानमङ्गाङ्गिनोरप्यविरुद्धम् ।

अथ शृङ्गारनेत्रवस्थाः—

स दक्षिणः शठो धृष्टः पूर्वा प्रत्यन्यया हृतः ॥ ६ ॥

नायकप्रकरणात्पूर्वा नायिकां प्रत्यन्ययापूर्वनायिकयापहतचित्तद्वयवस्थो  
वक्ष्यमाणभेदेन स चतुरवस्थः । तदेवं पूर्वोक्तानां चतुर्णां प्रत्येकं चतुरवस्थ-  
त्वेन षोडशधा नायकः ।

तत्र—

दक्षिणोऽस्यां सहृदयः

योऽस्यां ज्येष्ठायां हृदयेन सह व्यवहरति स दक्षिणः । यथा ममैव—

‘प्रसीदत्यालोके किमपि किमपि प्रेमगुरवो

रतिक्रीडाः कोऽपि प्रतिदिनमपूर्वोऽस्य विनयः ।

सविश्रम्भः कश्चित्कथयति च किञ्चित्परिजनो

न चाहं प्रत्येमि प्रियसखि किमप्यस्य विकृतिम् ॥’

यथा वा—

‘उचितः प्रणयो वरं विहन्तुं बहवः खण्डनहेतवो हि दृष्टाः ।

उपचारविधिर्मनस्विनीनां ननु पूर्वाभ्यधिकोऽपि भावशून्यः ॥’

अथ शठः—

गूढविप्रियकृच्छठः ।

दक्षिणस्यापि नायिकान्तरापहतचित्ततया विप्रियकारिणाविशेषेऽपि सह-  
हृदयत्वेन शठाद्विशेषः । यथा—

‘शठोऽन्यस्याः काञ्चीमणिरणितमाकर्ण्य सहसा  
यदाश्लिष्यन्नेव प्रशिथिलभुजग्रन्थिरभवः ।  
तदेतत्काचक्षे घृतमधुमयत्वद्बहुवचो-  
विषेणाघूर्णन्ती किमपि न सखी मे गणयति ॥’

अथ धृष्टः—

व्यक्ताङ्गवैकुतो धृष्टो

यथामरुशतके—

‘लाक्षालक्ष्म ललाटपट्टमभितः केयूरमुद्रा गले  
वक्त्रे कज्जलकालिमा नयनयोस्ताम्बूलरागोऽपरः ।  
दृष्ट्वा शोषविधायिमण्डनमिदं प्रातश्चिरं प्रेयसो  
लीलातामरसोदरे मृगदृशः श्वासाः समाप्तिं गताः ॥’

भेदान्तरमाह—

ऽनुकूलस्त्वेकनायिकः ॥ ७ ॥

यथा—

‘अद्वैतं सुखदुःखयोरनुगतं सर्वास्ववस्थासु य-  
द्विश्रामो हृदयस्य यत्र जरसा यस्मिन्नहार्यो रसः ।  
कालेनावरणात्ययात्परिणते यत्स्नेहसारे स्थितं  
भद्रं तस्य सुमानुषस्य कथमप्येकं हि तत्प्राप्यते ॥’

किमवस्थः पुनरेषां वत्सराजादिर्नाटिकानायकः स्यादित्युच्यते । पूर्वम-  
नुपजातनायिकान्तरानुरागोऽनुकूलः । परतस्तु दक्षिणः । ननु च गूढविप्रि-  
यकारित्वाद्व्यक्ततरविप्रियत्वाच्च शास्त्रधार्ष्ट्येऽपि कस्मान्न भवतः । न तथा-  
विधविप्रियत्वेऽपि वत्सराजादेराप्रबन्धसमाप्तेर्ज्येष्ठां नायिकां प्रति सहृदयत्वा-  
दक्षिणतैव । न चोभयोर्ज्येष्ठाकनिष्ठयोर्नायिकस्य स्नेहेन न भवितव्यमिति  
वाच्यमविरोधात् । महाकविप्रबन्धेषु च—

‘स्नाता तिष्ठति कुन्तलेश्वरसुता वारोऽङ्गराजस्वसु-

र्धूते रात्रिरियं जिता कमलया देवी प्रसाद्याद्य च ।

इत्यन्तःपुरमुन्दरीः प्रति मया विज्ञाय विज्ञापिते  
देवेनाप्रतिपत्तिमूढमनसा द्वित्राः स्थितं नाडिकाः ॥'

इत्यादावपक्षपातेन सर्वनायिकासु प्रतिपत्त्युपनिबन्धनात् ।

तथा च भरतः—

‘मधुरस्त्यागी रागं न याति मदनस्य नापि वशमेति ।

अवमानितश्च नार्यो विरज्यते स तु भवेज्ज्येष्ठः ॥’

इत्यत्र न रागं याति न मदनस्य वशमेतीत्यनेनासाधारण एकस्यां स्नेहो निषिद्धो दक्षिणस्येति । अतो वत्सराजादेराप्यनमनामि स्थितं दाक्षिण्यमिति । षोडशानामपि प्रत्येकं ज्येष्ठमवमानितेनाप्यनमनामि स्थितं दाक्षिण्यमिति । भवन्ति ।

सहायानाह—

पताकानायकस्त्वन्यः पीठमर्दो विचक्षणः ।

तस्यैवानुचरो भक्तः किञ्चिदूनश्च तद्गुणः ॥ ८ ॥

प्रागुक्तग्रामद्विकेनिवृत्तविशेषः पताका तन्नायकः पीठमर्दः प्रधानेतिवृत्तनायकस्य सहायः । यथा मालतीमात्रवे मकरन्दः, रामायणे सुग्रीवः ।

सहायान्तरमाह—

एकविद्यो विटश्चान्यो हास्यकृच्च विदूषकः ।

गीतादिविद्यानां नायकोपयोगिनीनामेकस्या विद्याया वेदिता विटः । हास्यकारी विदूषकः । अस्य विकृताकारवेपादित्वं हास्यकारित्वेनैव लभ्यते । यथा शेखरको नागानन्दे विटः । विदूषकः प्रसिद्ध एव ।

अथ प्रतिनायकः—

लुब्धो धीरोद्धतः स्तब्धः पापकृद्व्यसनी रिपुः ॥ ९ ॥

तस्य नायकस्येत्यर्थभूतः प्रतिपत्तनायको भवति । यथा रामयुधिष्ठिरयो रावणदुर्योधनौ ।

अथ सात्त्विका नायकगुणाः—

शोभा विलासो माधुर्यं गाम्भीर्यं स्थैर्यतेजसी ।

ललितोदार्यमित्यष्टौ सत्त्वजाः पौरुषा गुणाः ॥ १० ॥

तत्र—

नीचे घृणाधिके स्पर्धा शोभायां शौर्यदक्षते ।

नीचे घृणा । यथा वीरचरिते—

‘उत्तालताडकोत्पातदर्शनेऽप्यप्रकम्पितः ।

नियुज्यमानमागच्छेन विचिकित्सति ॥’

गुणाधिकैः स्पर्धा यथा—

‘एतां पश्य पुरःस्थलीमिह किल क्रीडाकिरातो हरः

कोदण्डेन किरीटिना सरभसं चूडान्तरे ताडितः ।

इत्याकर्ण्य कथाद्भुतं हिमनिधावद्रौ सुभद्रापते-

• मन्दं मन्दमकारि येन निजयोर्दोर्दण्डयोर्मण्डलम् ॥’

शौर्यशोभा । यथा ममैव—

‘अन्त्रैः स्वैरपि संयताग्रचरणो मूर्च्छाविरामक्षणे

स्वाधीनव्रणिताङ्गशस्त्रनिचितो रोमोद्गमं वर्मयन् ।

भग्नानुद्गल्यन्निजान्परभयान्तर्जयन्निष्ठुरं

धन्यो धाम जयश्रियः पृथुरणस्तम्भे पतारानवे ॥’

दक्षशोभा । यथा वीरचरिते—

‘स्फूर्जद्भज्रसहस्रनिर्मितमिव प्रादुर्भवत्यग्रतो

रामस्य त्रिपुरान्तकृद्विषदां नेत्रोभिरिदं धनुः ।

शुण्डारः कलभेन यद्वदचले वत्सेन दोर्दण्डक-

स्तस्मिन्नाहित एव गर्जितगुणं कृष्टं च भग्नं च तत् ॥’

अथ विलासः—

गतिः सधैर्या दृष्टिश्च विलासे सस्मितं वचः ॥ ११ ॥

यथा—

‘दृष्टिस्तृणीकृतजगत्रयसत्त्वसारा

धीरोद्धता नमयतीव गतिर्धरित्रीम् ।

कौमारकेऽपि गिरिवद्भुतां दधानो

वीरो रसः किमयमेत्युत दर्प एव ॥’

अथ माधुर्यम्—

श्लक्ष्णो विकारो माधुर्यं संक्षोभे सुमहत्यपि ।

महत्यपि विकारहेतौ मधुरो विकारो माधुर्यम् । यथा—

‘कपोले जानक्याः करिकलभदन्तद्युतिमुपि

स्मरस्मेरं गण्डोद्गमरपुलकं वक्रकमलम् ।

मुहुः पश्यञ्शृण्वन्रजनिचरसेनाकलकलं  
जटाजूटग्रन्थि द्रढयति रघूणां परिवृढः ॥'

अथ गाम्भीर्यम्—

गाम्भीर्यं यत्प्रभावेन विकारो नोपलक्ष्यते ॥ १२ ॥

मृदुविकारोपलम्भाद्विकारानुपलब्धिरन्येति माधुर्यादन्यद्गाम्भीर्यम् ।

यथा—

‘आहूतस्याभिपेकाय विसृष्टस्य वनाय च ।

न मया लक्षितस्तस्य स्वल्पोऽप्याकारविभ्रमः ॥’

अथ स्थैर्यम्—

व्यवसायादचलनं स्थैर्यं विघ्नकुलादपि ।

यथा वीरचरिते—

‘प्रायश्चित्तं चरिष्यामि पूज्यानां वो व्यतिक्रमात् ।

न त्वेवं दूषयिष्यामि शस्त्रग्रहमहाव्रतम् ॥’

अथ तेजः—

अधिक्षेपाद्यसहनं तेजः प्राणात्ययेष्वपि ॥ १३ ॥

यथा—

‘ब्रूत नूतनकृष्माण्डफलानां के भवन्त्यमी ।

अङ्गुलीदर्शनाद्येन न जीवन्ति मनस्विनः ॥’

अथ ललितम्—

शृङ्गाराकारचेष्टात्वं सहजं ललितं मृदु ।

स्वाभाविकः शृङ्गारो मृदुः । तथाविधा शृङ्गारचेष्टा च ललितम् । यथा  
ममेव—

‘लावण्यमन्मथविलासविनृम्भितेन

स्वाभाविकेन सुकुमारमनोहरेण ।

किंवा ममेव सखि योऽपि ममोपदेष्टा

तस्यैव किं न विषमं विदधीत तापम् ॥’

अथौदार्यम्—

प्रियोत्तयाजीवितादानमौदार्यं सदुपग्रहः ॥ १४ ॥



प्रियवचनेनसहाजीवितावधेर्दानमौदार्यं सतामुपग्रहश्च । यथा नागानन्दे—

‘शिरामुखैः स्यन्दत एव रक्तमद्यापि देहे मम मांसमस्ति ।

तृप्तिं न पश्यामि तवैव तावर्तिकं भक्षणाच्चं विरतो गरुत्मन् ॥’

सदुपग्रहो यथा—

‘एते वयममी दाराः कन्येयं कुलजीवितम् ।

ब्रूत येनात्र वः कार्यमनास्था बाह्यवस्तुषु ॥’

अथ नायिका—

स्वान्या साधारणस्त्रीति तद्गुणा नायिका त्रिधा ।

तद्गुणेति यथोक्तसंभवे नायकसामान्यगुणयोगिनी नायिकेति । स्वस्त्री  
परस्त्री साधारणस्त्रीत्यनेन विभागेन त्रिधा ।

तत्र स्वीयाया विभागगर्भं नामान्यत्राह—

मुग्धा मध्या प्रगल्भेति स्वीया शीलार्जवादियुक् ॥ १५ ॥

शीलं सुवृत्तम् । प्रतिपादयित्वा लज्जावती पुरुषोपचारनिपुणा स्वीया  
नायिका ।

तत्र शीलवती यथा—

‘कुलवादिआणु पेच्छह जोडवणलाअण्णविठ्ठमविलासा ।

पवसन्ति व पवसिण् एन्ति व पिये वरं एत्ते ॥’

नायिकायोगिनी यथा—

‘हंसितमविआरमुद्धं भमिअं विरहितविलासमुच्छायम् ।

भणिअं महावमरं धण्णाण घरे कलत्ताणम् ॥’

लज्जावती यथा ।

‘लज्जापज्जत्तपमाहणाइं परतित्तिणिप्पिवासाइं ।

अविणअदुम्मेहाइं धण्णाण घरे कलत्ताइं ॥’

१. ‘स्वापि’ इति पाठः.

२. ‘कुलवालिकायाः प्रेक्षस्व यौवनलावण्यविभ्रमविलासाः ।  
प्रवसन्तीव प्रवसिते आगच्छन्तीव प्रिये गृहमागते ॥’ इति च्छाया.

३. ‘हंसितमविचारमुग्धं भ्रमितं विरहितविलासमुच्छायम् ।  
भणितं स्वभावसरलं धन्यानां गृहे कलत्राणाम् ॥’ इति च्छाया.

४. ‘लज्जापर्याप्तप्रसाधनानि परतृप्तिनिष्पिपासानि ।  
अविनयदुर्मन्त्रांसि धन्यानां गृहे कलत्राणि ॥’ इति च्छाया

सा चैवंविधा स्वीया मुग्धा-मध्या-प्रगल्भाभेदात्रिविधा ।

तत्र—

मुग्धा नववयःकामा रता वामा मृदुः क्रुधि ।

प्रथमावतीर्णतारुण्यमन्मथा रमणे वामशीला सुखोपायप्रसादना मुग्ध-  
नायिका ।

तत्र वयोमुग्धा यथा—

‘विस्तारी स्तनभार एष गमितो न स्वोचितामुन्नतिं  
रेखोद्भासिकृतं वलित्रयमिदं न स्पष्टनिम्नोन्नतम् ।  
मध्येऽस्या ऋजुरायतार्धकपिशा रोमावली निर्मिता  
रम्यं यौवनशैशवव्यतिकरोन्मिश्रं वयो वर्तते ॥’

यथा च ममैव—

‘उच्छ्वसन्मण्डलप्रान्तरेखमावद्धकुञ्जलम् ।  
अपर्यातिमुरोवृद्धेः शंसत्यस्याः स्तनद्वयम् ॥’

काममुग्धा यथा—

‘दृष्टिः सालसतां विभर्ति न शिशुकीडासु बद्धादरा  
श्रोत्रे प्रेषयति प्रवर्तितसखीसंभोगवार्तास्वपि ।  
पुंसामङ्कमपेतशङ्कमधुना नारोहति प्राग्यथा  
बाला नूतनयौवनव्यतिकरावष्टभ्यमाना शनैः ॥’

रतवामा यथा—

‘व्याहृता प्रतिवचो न संदधे गन्तुमैच्छद्वलम्बितांशुका ।  
सेवते स्म शयनं पराङ्मुखी सा तथापि रतये पिनाकिनः ॥’

मृदुः कोपे यथा—

‘प्रथमजनिते बाला मन्यौ विकारमजानती  
कितवचरिते नासज्याङ्के विनम्रभुजैव सा ।  
चिबुकमलिकं चोन्नम्योच्चैरकृत्रिमविभ्रमा  
नयनसलिलस्यन्दिन्योष्ठै रुदन्त्यपि चुम्बिता ॥’

एवमन्येऽपि लज्जासंवृतानुरागनिबन्धना मुग्धा व्यवहारा निबन्धनीयाः ।

यथा—

‘न मध्ये संस्कारं कुसुममपि बाला विषहते  
न निःश्वासैः सुभ्रूर्जनयति तरङ्गव्यतिकरम् ।

नवोदा पश्यन्ती लिखितमिव भर्तुः प्रतिमुखं  
प्ररोहद्रोमाञ्चा न पिबति न पात्रं चलयति ॥'

अथ मध्या—

मध्योद्यद्यावनानङ्गा मोहान्तमुरतक्षमा ॥ १६ ॥

संप्राप्ततारुण्यकामा मोहान्तरतयोग्या मध्या ।

तत्र यौवनवती यथा—

‘आलापान्भ्रूविलासो विरलयति लसद्बाहुविक्षिप्तियातं  
नीवीग्रन्थि प्रथिम्ना प्रतनयति मनाङ्गमध्यनिम्नो नितम्बः ।  
उत्पुष्पत्पार्श्वमूर्च्छत्कुचशिखरमुरो नूनमन्तः स्मरेण  
स्पृष्टा कोदण्डकोट्या हरिणशिशुदृशो दृश्यते यौवनश्रीः ॥’

कामवती यथा—

‘स्मरनवनदीपूरेणोदाः पुनर्गुरुसेतुभि-  
र्यदपि विधृतास्तिष्ठन्त्यारादपूर्णमनोरथाः ।  
तदपि लिङ्गितप्रस्यैरङ्गैः परस्परमुन्मुखा  
नयननलिनीनालकृष्टं पिबन्ति रसं प्रियाः ॥’

म पापभोगो यथा—

‘ताव च्चिअ रइसमए महिलाणं विब्भमा विराजन्ति ।  
जाव ण कुवलयदलसच्छहाइ मउलेन्ति णअणाइं ॥’  
एवं धीरायामधीरायां धीराधीरायामप्युदाहार्यम् ।

अथास्या मानवृत्तिः—

धीरा सोत्प्रासवक्रोक्त्या मध्या साश्रु कृतागसम् ।  
खेदयेदयितं कोपादधीरा परुषाक्षरम् ॥ १७ ॥

मध्याधीरा कृतापराधं प्रियं सोत्प्रासवक्रोक्त्या खेदयेत् । यथा मावे—

‘न खलु वयममुष्य दानयोग्याः  
पिबति च पाति च यासकौरहस्त्वाम् ।  
त्रज विटपममुं ददस्व तस्यै  
भवतु यतः सदशोश्चिराय योगः ॥’

१. ‘तावदेव रतिसमये महिलानां विभ्रमा विराजन्ते ।

यावन्न कुवलयदलस्वच्छमानि मुकुलयन्ति नयनानि ॥’ इति च्छाया.

धीराधीरा साश्रु सोत्प्रासवक्रोक्त्या खेदयेत् । यथामरुशतके—

‘बाले नाथ विमुञ्च मानिनि रुषं रोषान्मया किं कृतं  
खेदोऽस्मासु न मेऽपराध्यति भवान्सर्वेऽपराधा मयि ।  
तत्किं रोदिषि गद्गदेन वचसा कस्याग्रतो रुद्यते  
नन्वेतन्मम का तवास्मि दयिता नास्मीत्यतो रुद्यते ॥’

अधीरा साश्रु परुषाक्षरम् । यथा—

‘यातु यातु किमनेन तिष्ठता मुञ्च मुञ्च सखि मादरं कृथाः ।  
खण्डिताधरकलङ्कितं प्रियं शकुमो न नयनैर्निरीक्षितुम् ॥’

एवमपरेऽपि व्रीडानुपहिताः स्वयमनभियोगकारिणो मध्याव्यवहारा भव-  
न्ति । यथा—

‘स्वेदाम्भःकणिकाञ्छितेऽपि वदने जातेऽपि रोमोद्गमे  
विश्रम्भेऽपि गुरौ पयोधरभरोत्कम्पेऽपि वृद्धिं गते ।  
दुर्वारस्मरनिर्भरेऽपि हृदये नैवामियुक्तः प्रिय-  
स्तन्वङ्ग्या हठकेशकर्षणघनाश्लेषासृते लुब्धया ॥’

स्वतोऽनभियोजकत्वं हठकेशकर्षणघनाश्लेषासृते लुब्धयेवेत्युत्प्रेक्षाप्रतीतिः ।  
अथ प्रगल्भा—

यौवनान्धा स्मरोन्मत्ता प्रगल्भा दयिताङ्गके ।  
विलीयमानेवानन्दाद्रतारम्भेऽप्यचेतना ॥ १८ ॥

गाढयौवना । यथा ममैव—

‘अभ्युन्नतस्तनमुरो नयने च दीर्घे  
वक्त्रे श्रुवावतितरां वचनं ततोऽपि ।  
मध्योऽधिकं तनुरतीवगुरुर्नितम्बो  
मन्दा गतिः किमपि चाद्भुतयौवनायाः ॥’

यथा च—

‘स्तनतटमिदमुत्तुङ्गं निम्नो मध्यः समुन्नतं जघनम् ।  
विषमे मृगशावाक्ष्या वपुषि नवे क इव न सखलति ॥’

भावप्रगल्भा यथा—

‘न जाने संसुखायाते प्रियाणि वदति प्रिये ।  
सर्वाण्यङ्गानि किं यान्ति नेत्रतामुत कर्णताम् ॥’

रतप्रगल्भा यथा—

‘कान्ते तल्पमुपागते विगलिता नीवी स्वयं बन्धना-

द्वांसः प्रथमेखलागुणधृतं किञ्चिन्नितम्बे स्थितम् ।

एतावत्सखि वेद्मि केवलमहं तस्याङ्गसङ्गे पुनः

कोऽसौ कास्मि रतं नु किं कथमिति स्वल्पापि मे न स्मृतिः ॥’

एवमन्येऽपि परित्यक्तहीयन्त्रणावैदग्ध्यप्रायाः प्रगल्भा व्यवहारा वेदि-  
तव्याः । यथा—

‘कचित्ताम्बूलाक्तः कचिदगरुपङ्काङ्कमलिनः

क्वचिन्नर्णोद्गारी कचिदपि च सालक्तकपदः ।

वलीभङ्गाभोगैरलकपतितैः शीर्णकुसुमैः

स्त्रियाः सर्वावस्थं कथयति रतं प्रच्छदपटः ॥’

अथास्याः कोपचेष्टा—

सावहित्थादरोदास्ते रतौ धीरेतरा कुधा ।

संतर्ज्य ताडयेन्मध्या मध्याधीरेव तं वदेत् ॥ १९ ॥

सहावहित्थेनाकारसंवरणेनादेरेण चोपचाराधिक्येन वर्तते सा सावहि-  
त्थादरा । रतावुदासीना कुधा कोपेन भवति ।

सावहित्थादरा । यथामरुशतके—

‘एकत्रासनसंस्थितिः परिहृता प्रत्युद्गमादूरत-

स्ताम्बूलाहरणच्छलेन रभसाश्लेषोऽपि संविघ्नितः ।

आलापोऽपि न मिश्रितः परिजनं व्यापारयन्त्यान्निके

कान्तं प्रत्युपचारतश्चतुरया कोपः कृतार्थोऽकृतः ॥’

रतावुदासीना यथा—

‘आयस्ता कलहं पुरेव कुरुते न स्वंसने वाससो

भग्नभ्रूगतिखण्ड्यमानमधरं धत्ते न केशग्रहे ।

अङ्गान्यर्पयति स्वयं भवति नो वामा हठालिङ्गने

तन्व्या शिसित एष संप्रति कुतः कोपप्रकारोऽपरः ॥’

इतरा त्वधीरप्रगल्भा कुपिता सति संतर्ज्य ताडयति । यथामरुशतके—

‘कोपात्कोमललोलबाहुलतिकापाशेन बद्धा दृढं

नीत्वा केलिनिकेतनं दयितया सायं सखीनां पुरः ।

भूयोऽप्येवमिति स्वल्कलगिरा संसूच्य दुश्चेष्टितं  
धन्यो हन्यत एष निहृतिपरः प्रेयान् रुदन्त्या हसन् ॥'

धीराधीरप्रगल्भा मध्याधीरेव तं वदति सोत्प्रासवक्रोक्त्या । यथा तत्रैव—  
'कोपो यत्र भ्रुकुटिरचना निग्रहो यत्र मौनं  
यत्रान्योन्यस्मितमनुनयो दृष्टिपातः प्रसादः ।  
तस्य प्रेम्णस्तदिदमधुना वैशसं पश्य जातं  
त्वं पादान्ते लुठसि न च मे मन्युमोक्षः खलायाः ॥'

पुनश्च—

द्वेष्टा ज्येष्ठा कनिष्ठा चेत्यमुग्धा द्वादशोदिताः ।

मध्याप्रगल्भाभेदानां प्रत्येकं ज्येष्ठाकनिष्ठात्वभेदेन द्वादश भेदा भवन्ति ।  
मुग्धा त्वेकरूपैव । ज्येष्ठाकनिष्ठे । यथामरुशतके—

'द्वैकैकासनसंस्थिते प्रियतमे पश्चादुपेत्यादरा-  
देकस्या नयने निमील्य विहितक्रीडानुबन्धच्छलः ।  
ईषद्विक्रितकन्धरः सपुलकः प्रेमोलसन्मानसा-  
मन्तर्हासलसत्कपोलफलकां धूर्तोऽपरां चुम्बति ॥'

न चानयोर्दानिग्रयप्रेमभ्यामेव व्यवहारः । अपि तु प्रेम्णापि । यथा  
चैतत्तथोक्तं दण्डिना । एषां च धीरमध्या-अधीरमध्या-धीराधीरम-  
ध्या-धीरप्रगल्भा-अधीरप्रगल्भा-धीराधीरप्रगल्भाभेदानां प्रत्येकं ज्येष्ठाकनि-  
ष्ठाभेदाद्द्वादशानां वासवदत्ता-रत्नावलीवत्प्रबन्धनायिकानामुदाहरणानि महा-  
त्रिप्रबन्धेष्वनुसर्तव्यानि ।

अथान्यस्त्री—

अन्यस्त्री कन्यकोढा च नान्योढाङ्गिरसे क्वचित् ॥ २० ॥

कन्यानुरागमिच्छातः कुर्यादङ्गाङ्गिसंश्रयम् ।

नायकान्तरसंबन्धिन्योढा । यथा—

'दृष्टिं हे प्रतिवेशिनि क्षणमिहाप्यस्मिन्गृहे दास्यसि  
प्रायेणास्य शिशोः पिता न विरसाः कौपीरपः पास्यति ।  
एकाकिन्यपि यामि तद्वरमितः स्रोतस्तमालाकुलं  
नीरन्ध्रास्तनुमालिखन्तु जरठच्छेदानलग्नययः ॥'

इयं त्वङ्गिनि प्रधानं रसे न कर्चिन्नन्वर्नीयेति न प्रपञ्चिता । कन्यका तु पित्राद्यायत्तत्वादपरिणीताप्यन्यस्त्रीत्युच्यते । तस्यां पित्रादिभ्योऽन्यमानायां मुग्धभायामपि परोपरोधस्वकान्ताभयात्प्रच्छन्नं कामित्वं प्रवर्तते । यथा मालत्यां माधवस्य सागरिकायां च वत्सराजस्येति । तदनुरागश्च स्वेच्छया प्रधानाप्रधानरससमाश्रयो निबन्धनीयः । यथा रत्नावली-नागानन्दयोः सागरिका-मलयवत्यनुराग इति ।

**साधारणस्त्री गणिका कलाप्रागल्भ्यधौत्ययुक्त ॥ २१ ॥**

तद्यवहारो विस्तरतः शास्त्रान्तरे निर्दिष्टः । दिङ्मात्रं तु—

**छन्नकाममुखार्थाङ्गस्वतन्त्राहंयुपण्डकान् ।**

**रक्तेव रञ्जयेदाढ्यान्निःस्वान्मात्रा विवासयेत् ॥ २२ ॥**

छन्नं ये कामयन्ते ते छन्नकामाः श्रोत्रियगणिभिर्द्विप्रभृतयः, मुखार्थोऽप्रयासावासधनः सुखप्रयोजनो वा, अङ्गो मूर्खः, स्वतन्त्रो निरङ्कुशः, अहंयुरहंकृतः, पण्डको वातपण्डादिः, एतान्बहुवित्तान् रक्तेव रञ्जयेदर्थार्थम् । तत्प्रधानत्वात्तद्वृत्तेः । गृहीतार्थान्कुट्टन्यादिना निष्कासयेत्पुनः प्रति-संधानाय । इदं तासामौत्सर्गिकं रूपम् ।

रूपकेषु तु—

**रक्तेव लप्रहसने नैषा दिव्यनृपाश्रये ।**

प्रहसनवर्जिते प्रकरणादौ रक्तैवैषा विधेया । यथा मृच्छकटिकायां वसन्तसेना चारुदत्तस्य । प्रहसने त्वरक्तापि हास्यहेतुत्वात् । नाटकादौ तु दिव्यनृपनायके नैव विधेया ।

अथ भेदान्तराणि—

**आसामष्टावस्थाः स्युः स्वाधीनपतिकादिकाः ॥ २३ ॥**

स्वाधीनपतिका वासकसज्जा विरहोत्कण्ठिता खण्डिता कलहान्तरिता विप्रलब्धा प्रोषितप्रिया अभिसारिकेत्यष्टौ स्वस्त्रीप्रभृतीनामवस्थाः । नायिकाप्रभृतीनामप्यवस्थारूपत्वे सत्यवस्थान्तराभिधानं पूर्वासां धर्मित्वप्रतिपादनायाष्टाविति न्यूनाधिकव्यवच्छेदः । न च वासकसज्जादेः स्वाधीनपतिकादावन्तर्भावः । अनासन्नप्रियत्वाद्वासकसज्जाया न स्वाधीनपतिकात्वम् । यदि चैष्यत्प्रियापि स्वाधीनपतिका प्रोषितप्रियापि न पृथग्वाच्या । न चेत्या

व्यवधानेनासत्तिरिति नियन्तुं शक्यम् । न चाविदितप्रियव्यलीकायाः खण्डितात्वं नापि प्रवृत्तरतिभोगेच्छायाः प्रोषितप्रियात्वं स्वयमगमनात्त्रायकं प्रत्यप्रयोजकत्वान्नाभिसारिकात्वम् । एवमुत्कण्ठिताप्यन्यैव पूर्वाभ्यः । औचित्यप्राप्तप्रियागमनसमयातिवृत्तिविधुरा न वासकसज्जा । तथा विप्रलब्धापि वासकसज्जावदन्यैव पूर्वाभ्यः । उक्त्वा नायात इति प्रतारणाविक्याच्च वासकसज्जोत्कण्ठितयोः पृथक् । कलहान्तरिता तु यद्यपि विदितव्यलीका तथाप्यगृहीतप्रियानुनया पश्चात्तापप्रकाशितप्रसादा पृथगेव खण्डितायाः । तत्स्थितमेतदष्टावस्था इति ।

तत्र—

आसन्नायत्तरमणा हृष्टा स्वाधीनभर्तृका ।

यथा—

‘मा गर्वमुद्रह कपोलतले चकास्ति  
कान्तस्वहस्तलिखिता मम मञ्जरीति ।  
अन्यापि किं न सखि भाजनमीदृशानां  
वैरी न चेद्भवति वेपथुरन्तरायः ॥’

अथ वासकसज्जा—

मुदा वासकसज्जा स्वं मण्डयत्येप्यति प्रिये ॥ २४ ॥

स्वमात्मानं वेश्म च हर्षेण भूषयत्येप्यति प्रिये । वासकसज्जा यथा—

‘निजपाणिपल्लवतटस्खलनादभिनासिकाविवरमुत्पतितैः ।  
अपरा परीक्ष्य शनकैर्मुमुदे मुखवासमास्यकमलश्चसनैः ॥’

अथ विरहोत्कण्ठिता—

चिरयत्यव्यलीके तु विरहोत्कण्ठितोन्मनाः ।

यथा—

‘सखि स विजितो वीणावाद्यैः कथाप्यपरस्त्रिया  
पाणिनमभननाभ्यां तत्र क्षपाललितं ध्रुवम् ।  
कथमिनरथा सेफालीषु स्वलत्कुसुमास्वपि  
प्रसरति नभोमध्येऽपीन्दौ प्रियेण विलम्ब्यते ॥’



अथ खण्डिता—

ज्ञातेऽन्यासङ्गविकृते खण्डितेर्ण्याकषायिता ॥ २५ ॥

यथा—

‘नवनखपदमङ्गं गोपयस्संशुकेन  
स्थगयसि पुनरोष्ठं पाणिना दन्तदष्टम् ।  
प्रतिदिशमपरस्त्रीसङ्गशंसी विसर्प-  
न्नवपरिमलगन्धः केन शक्यो वरीतुम् ॥’

अथ कलहान्तरिता—

कलहान्तरितामर्षाद्विधूतेऽनुशयार्तियुक् ।

यथा—

‘निःश्वासा वदनं दहन्ति हृदयं निर्मूलमुन्मथ्यते  
निद्रा नैति न दृश्यते प्रियमुखं नक्तं दिवं रुद्यते ।  
अङ्गं शोषमुपैति पादपतितः प्रेयांस्तथोपेक्षितः  
सख्यः कं गुणमाकलय्य दयिते मानं वयं कारिताः ॥’

अथ विप्रलब्धा—

विप्रलब्धोक्तसमयमप्राप्तेऽतिविमानिता ॥ २६ ॥

यथा—

‘उत्तिष्ठ दूति यामो यामो यातस्तथापि नायातः ।  
यातः परमपि जीवेज्जीवितनाथो भवेत्तस्याः ॥’

अथ प्रोषितप्रिया—

दूरदेशान्तरस्थे तु कार्यतः प्रोषितप्रिया ।

यथामरुशतके—

‘आदृष्टिप्रसरात्प्रियस्य पदवीमुद्वीक्ष्य निर्विण्णया  
विश्रान्तेषु पथिष्वहःपरिणतौ ध्वान्ते समुत्सर्पति ।  
दत्त्वैकं सशुचा गृहं प्रति पदं पान्थस्त्रियास्मिन्क्षणे  
माभूदागत इत्यमन्दवलितग्रीवं पुनर्वीक्षितम् ॥’

अथाभिसारिका—

कामार्ताभिसरेत्कान्तं सारयेद्वाभिसारिका ॥ २७ ॥

यथामरुशतके—

‘उरसि निहितस्तारो हारः कृता जघने घने  
कलकलवती काञ्ची पादौ रणन्मणिनूपुरौ ।  
प्रियमभिसरस्येवं मुग्धे त्वमाहतडिण्डिमा  
यदि किमधिकत्रासोत्कम्पं दिशः समुदीक्षसे ॥’

यथा च—

‘न च मेऽवगच्छति यथा लघुतां  
करुणां यथा च कुरुते स मयि ।  
निपुणं तथैनमुपगम्य वदे-  
रभिव्रूति काचिदिति संदिदिशे ॥’

तत्र—

चिन्तानिःश्वासस्वेदाश्रुवैवर्ण्यग्लान्यभूषणैः ।  
युक्ताः षडन्त्या द्वे चाद्ये क्रीडौज्ज्वल्यप्रहर्षितैः ॥ २८ ॥

परस्त्रियौ तु कन्यकोदे । संकेतात्पूर्वं विरहोत्कण्ठिते पश्चाद्विदूषकादिना  
सहाभिसरन्त्यावभिसारिके । कुतोऽपि संकेतस्थानमप्राप्ते नायके विप्रलब्धे इति  
व्यवस्थितैवानयोरिति । अस्वाधीनप्रिययोरवस्थान्तरायोगात् । यत्तु मालवि-  
काग्निमित्रादौ ‘योऽप्येवं धीरः सोऽपि दृष्टो देव्याः पुरतः’ इति मालविकाव-  
चनानन्तरम्—‘राजा—

दाक्षिण्यं नाम बिम्बोष्ठि नायकानां कुलव्रतम् ।  
तन्मे दीर्घाक्षि ये प्राणास्ते त्वदाशानिवन्धनाः ॥’

इत्यादि, तन्न । खण्डिनानुनयाभिप्रायेण । अपि तु सर्वथा मम देव्यधीनत्वमा-  
शङ्क्य निराशा मा भूदिति कन्याविश्रम्भणायेति । तथानुपसंजातनायक-  
समागमाया देशान्तरव्यवधानेऽप्युत्कण्ठितात्वमेवेति न प्रोषितप्रियात्वमनाय-  
त्तप्रियत्वादेवेति ।

अथासां सहायिन्यः—

दूत्यो दासी सखी कारुर्धात्रेयी प्रतिवेशिका ।

लिङ्गिनी शिल्पिनी स्वं च नेतृमित्रगुणान्विताः ॥ २९ ॥

दासी परिचारिका । सखी स्नेहनिबद्धा । कारू रजकीप्रभृतिः । धात्रे-

य्युपमातृसुता । प्रतिवेशिका प्रनिगृहिणी । लिङ्गिनी भिक्षुकादिका ।  
शिल्पिनी चित्रकारादिस्त्री । स्वयं चेति दूतीविशेषा नायकमित्राणां पी-  
ठमर्दादीनां निस्तृष्टार्थत्वादिना गुणेन युक्ताः । तथा च मालतीमाधवे काम-  
न्दकीं प्रति—

‘शास्त्रेषु निष्ठा सहजश्च बोधः प्रागल्भ्यमभ्यस्तगुणा च वाणी ।  
कालानुरोधः प्रतिभानवत्त्वमेते गुणाः कामदुघाः क्रियासु ॥’  
तत्र सखी । यथा—

‘मृगशिशुदृशस्तस्यास्तापं कथं कथयामि ते  
दहनपतिता दृष्टा मूर्तिर्मया न हि वैधवी ।  
इति तु विदितं नारीरूपः स लोकदृशां सुधा  
तव शठतया शिल्पोत्कर्षो विधेर्विघटिष्यते ॥’

यथा च—

‘सच्चं जाणइ दडुं सरिसम्मि जणम्मि जुज्जए राओ ।  
मरउ ण तुमं भणिसं मरणं पि सलाहणिज्जं से ॥’

स्वयं दूती । यथा—

‘भेहु एहि किं णिवालअ हरसि णिअं वाउ जइ वि मे सिचअम् ।  
साहेमि कस्स सुन्दर दूरे गामो अहं एक्का ॥’

इत्याद्युल्लम् ।

अथ योषिदलंकाराः—

यौवने सत्त्वजाः स्त्रीणामलंकारास्तु विंशतिः ।

यौवने सत्त्वोद्भूता विंशतिरलंकाराः स्त्रीणां भवन्ति ।

तत्र—

भावो हावश्च हेला च त्रयस्तत्र शरीरजाः ॥ ३० ॥

शोभा कान्तिश्च दीप्तिश्च माधुर्यं च प्रगल्भता ।

औदार्यं धैर्यमित्येते सप्त भावा अयत्रजाः ॥ ३१ ॥

१. ‘सत्यं जानाति द्रष्टुं सदृशे जने युज्यते रागः ।

प्रियतां न त्वां भणिष्यामि मरणमपि श्लाघनीयमस्याः ॥’ इति च्छाया.

२. ‘मुहुरेहि किं निवारक हरसि निजं वायो यद्यपि मे सिचयम् ।

साधयामि कस्य सुन्दर दूरे ग्रामोऽहमेका ॥’ इति च्छाया.

तत्र भावहावेहेलाख्योऽङ्गजाः । शोभा कान्तिर्दासिर्माधुर्यं प्रागल्भ्यमौ-  
दार्यं धैर्यमित्यत्रजाः सप्त ।

लीला विलासो विच्छित्तिर्विभ्रमः किलकिञ्चित् ।  
मोहायितं कुट्टमितं बिम्बोको ललितं तथा ॥ ३२ ॥  
विहृतं चेति विज्ञेया दश भावाः स्वभावजाः ।

तानेव निर्दिशति—

निर्विकारात्मकात्सत्त्वाद्भावस्तत्राद्यविक्रिया ॥ ३३ ॥

तत्र विकारहेतौ सत्यप्यविकारकं सत्त्वम् । यथा कुमारसंभवे—

‘श्रुताप्सरोगीतिरपि क्षणेऽस्मिन्हरः प्रसंख्यानपरो बभूव ।  
आत्मेश्वराणां न हि जातु विघ्नाः समाधिभेदप्रभवो भवन्ति ॥’

तस्मादविकाररूपात्सत्त्वाद्यः प्रथमो विकारोऽन्तर्विपरिवर्ती बीजस्योच्छ्र-  
नतेव स भावः । यथा—

‘दृष्टिः सालसतां बिभर्ति न शिशुकीडासु बद्धादरा  
श्रोत्रे प्रेषयति प्रवर्तितसखीसंभोगवार्तास्वपि ।  
पुंसामङ्गमपेतशङ्कमधुना नारोहति प्राग्यथा  
बाला नूतनयौवनव्यतिकरावष्टभ्यमाना शनैः ॥’

यथा वा कुमारसंभवे—

‘हरस्तु किञ्चित्परिलुप्तधैर्यश्चन्द्रोदयारम्भ इवाम्बुराशिः ।  
उमामुखे बिम्बफलाधरोष्ठे व्यापारयामास विलोचनानि ॥’

यथा वा ममैव—

‘तं च्चिअ वअणं ते च्चेअ लोअणे जोव्वणं पि तं च्चेअ ।  
अण्णा अणङ्गलच्छी अण्णं च्चिअ किं पि साहेइ ॥’

अथ हावः—

हेवौकसस्तु शृङ्गारो हावोऽक्षिभूविकारकृत् ।

प्रतिनियताङ्गविकारकारी शृङ्गारः स्वभावविशेषो हावः । यथा ममैव—

१. ‘तदेव वचनं ते चैव लोचने यौवनमपि तदेव ।

अन्यानङ्गलक्ष्मीरन्यदेव किमपि साधयति ॥’ इति च्छाया.

२. ‘अलालापः’ इति पाठः.

‘जं किं पि पेच्छमाणं भणमाणं रे जहा तह चेअ ।  
णिज्जाअ णेहमुद्धं वअस्स मुद्धं णिअच्छेहि ॥’

अथ हेला—

स एव हेला सुव्यक्तशृङ्गाररससूचिका ॥ ३४ ॥

हाव एव स्पष्टभूयोविकारत्वात्सुव्यक्तशृङ्गाररससूचको हेला । यथा  
ममैव—

‘तह झत्ति से पअत्ता सव्वङ्गं विव्भमा थणुब्भेए ।  
संसइअबालभावा होइ चिरं जह सहीणं पि ॥’

अथायत्नजाः सप्त । तत्र शोभा—

रूपोपभोगतारुण्यैः शोभाङ्गानां विभूषणम् ।

यथा कुमारसंभवे—

‘तां प्राञ्जुसीं तत्र निवेइय बालां क्षणं व्यलम्बन्त पुरो निषण्णाः ।  
भूतार्थशोभाद्विद्यमानेनेत्राः प्रसाधने संनिहितेऽपि नार्यः ॥’

इत्यादि । यथा च शाकुन्तले—

‘अनाघ्रातं पुष्पं किसलयमलूनं कररुहै-  
रनाविद्धं रत्नं मधु नवमनास्वादितरसम् ।  
अखण्डं पुण्यानां फलमिव च तद्रूपमनघं  
न जाने भोक्तारं कमिह समुपस्थास्यति विधिः ॥’

अथ कान्तिः—

मैन्मथावापितच्छाया सैव कान्तिरिति स्मृता ॥ ३५ ॥

शोभैव रागावतारघनीकृता कान्तिः । यथा—

‘उन्मीलद्वदनेन्दुदीप्तिविसरैर्दूरे समुत्सारितं  
भिन्नं पीनकुचस्थलस्य च रुचा हस्तप्रभाभिर्हृतम् ।

- 
१. ‘यत्किमपि त्रेक्षमाणं भणमानं रे यथा तथैव ।  
निर्धाय स्नेहसुग्धां वयस्य सुग्धां पश्य ॥’ इति च्छाया.
  २. ‘तथा झटित्यस्याः प्रवृत्ताः सर्वाङ्गं विभ्रमाः स्तनोद्भेदे ।  
संशयितबालभावा भवति चिरं यथा सखीनामपि ॥’ इति च्छाया.
  ३. ‘मन्मथाध्यासित’ इति पाठः.

एतस्याः कलविङ्ककण्ठकदलीकल्पं मिलत्कौतुका-  
दप्राप्ताङ्गसुखं रूपेव सहसा केशेषु लग्नं तमः ॥'

यथा हि महाश्रोतारगर्जनावमगे भट्टबाणस्य ।

अथ माधुर्यम्—

**अनुल्बणत्वं माधुर्यं**

यथा शाकुन्तले—

'सरमिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यं  
मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति ।  
इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी  
किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम् ॥'

अथ दीप्तिः—

**दीप्तिः कान्तेस्तु विस्तरः ।**

यथा—

'देवा पसिअ णिअन्तसुमुहससिजोण्हाविलुत्ततमणिवहे ।  
अहिमारिआण विघ्नं करेसि अण्णाण विहआसे ॥'

अथ प्रागल्भ्यम्—

**निःसाध्वसत्वं प्रागल्भ्यं**

मनःशोभपूर्वकोऽङ्गसादः साध्वसम्, तदभावः प्रागल्भ्यम् । यथा ममेव-  
'तथा ब्रीडाविधेयापि तथा मुग्धापि सुन्दरी ।  
कलाप्रयोगचातुर्ये सभास्वाचार्यकं गता ॥'

अथौदार्यम्—

**औदार्यं प्रश्रयः सदा ॥३६॥**

यथा—

'दिअहं खु दुक्खिआए सअलं काऊण गेहवावारम् ।  
गरुएवि मण्णुदुक्खे भरिमो पाअन्तसुत्तस्स ॥'

१. 'देवाद्दृष्ट्वा नितान्तसुमुखशशिज्योत्स्नाविलुप्ततमोनिवहे ।  
अभिसारिकाणां विघ्नं करोष्यन्यासां विहताशे ॥' इति च्छाया.
२. 'दिवसं खलु दुःखितायाः सकलं कृत्वा गृहव्यापारम् ।  
गुरुण्यपि मन्युदुःखे भरिमा पादान्ते सुप्तस्य ॥' इति च्छाया.

यथा वा—‘भ्रूभङ्गे सहसोद्भूता’ इत्यादि ।

अथ धैर्यम्—

चापलाविहता धैर्यं चिद्वृत्तिरविकल्थना ।

चापलानुपहता मनोवृत्तिरात्मगुणानामनाख्यायिका धैर्यमिति । यथा मालतीमाधवे—

‘ज्वलतु गगने रात्रौ रात्रावखण्डकलः शशी

दहतु मदनः किंवा मृत्योः परेण विधास्यति ।

मम तु दयितः श्लाघ्यस्तातो जनन्यमलान्वया

कुलममलिनं न त्वेवायं जनो न च जीवितम् ॥’

अथ स्वाभाविका दश । तत्र—

प्रियानुकरणं लीला मधुराङ्गविचेष्टितैः ॥ ३७ ॥

प्रियकृतानां वाग्धेषवेष्टानां शृङ्गारिणीनामङ्गनाभिरनुकरणं लीला ।

यथा ममैव—

‘तह दिडं तह भणिअं ताए णिअदं तहा तहा सीणम् ।

अवलोइअं सइण्हं सविब्भमं जह सवत्तीहिं ॥’

यथा वा—‘तेनोदितं वदति याति तथा यथामौ’ इत्यादि ।

अथ विलासः—

तात्कालिको विशेषस्तु विलासोऽङ्गक्रियादिषु ।

दयितावलोकनादिकालेऽङ्गे क्रियायां वचने च सातिशयविशेषोत्पत्ति-  
विलासः । यथा मालतीमाधवे—

‘अत्रान्तरे किमपि वाग्विभवातिवृत्त-

वैचित्र्यमुल्लसितविभ्रममायताक्ष्याः ।

तद्भूरिसात्विकविकारविशेषरम्य-

माचार्यकं विजयि मान्मथमाविरासीत् ॥’

१. ‘तथा दृष्टं तथा भणितं तथा नियतं तथा तथा शीर्षम् ।

अवलोकितं सतृष्णं सविभ्रमं यथा सपत्नीभिः ॥’ इति च्छाया.

२. ‘क्रियोक्तिषु’ इति पाठः.

यथा ममैव—

‘सभ्रूभङ्गं करकिसलयावर्तेनैरालपन्ती  
सा पश्यन्ती ललितललितं लोचनस्याञ्जलेन ।  
विन्यस्यन्ती चरणकमले लीलया स्वैरयातै-  
र्निःसंगीतं प्रथमवयसा नर्तिता पङ्कजाक्षी ॥’

अथ विहृतम्—

प्राप्तकालं न यद्भूयाद्भीडया विहृतं हि तत् ।  
प्राप्तावसरस्यापि वाक्यस्य लज्जया यदवचनं तद्विहृतम् । यथा—  
‘पादाङ्गुष्ठेन भूमिं किसलयरुचिना सापदेशं लिखन्ती  
भूयो भूयः क्षिपन्ती मयि सितशबले लोचने लोलतारे ।  
वक्त्रं ह्रीनम्रमीषत्फुरदधरपुटं वाक्यगर्भं दधाना  
यन्मां नोवाच किंचित्स्थितमपि हृदये मानसं तदुनोति ॥’

अथ नेतुः कार्यान्तरसहायानाह—

मन्त्री स्वं बोभयं वापि सखा तस्यार्थचिन्तने ॥ ४२ ॥  
तस्य नेतुरर्थचिन्तायां तन्त्रावापादिलक्षणायां मन्त्री वात्मा बोभयं वा  
सहायः ।

तत्र विभागमाह—

मन्त्रिणा ललितः शेषा मन्त्रिस्वायत्तसिद्धयः ।  
उक्तलक्षणो ललितो नेता मन्त्र्यायत्तसिद्धिः । शेषा धीरोदात्तादयः ।  
अनियमेन मन्त्रिणा स्वेन बोभयेन वाङ्गीकृतसिद्धय इति ।

धर्मसहायास्तु—

ऋत्विक्पुरोहितौ धर्मे तपस्विब्रह्मवादिनः ॥ ४३ ॥  
ब्रह्म वेदस्तं वदन्ति व्याचक्षते वा तच्छीला ब्रह्मवादिनः । आत्मज्ञा-  
निनो वा । शेषाः प्रतीताः ।

दुष्टदमनं दण्डः । तत्सहायास्तु—

सुहृत्कुमाराटविका दण्डे सामन्तसैनिकाः ।  
स्पष्टम् । एवं तत्तत्कार्यान्तरेषु सहायान्तराणि योज्यानि । यदाह—



अन्तःपुरे वर्षवराः किराता मूकवामनाः ॥ ४४ ॥

म्लेच्छाभीरशकाराद्याः स्वस्वकार्योपयोगिनः ।

शकारो राज्ञः श्यालो हीनजातिः ।

विशेषान्तरमाह—

ज्येष्ठमध्याधमत्वेन सर्वेषां च त्रिरूपता ॥ ४५ ॥

तारतम्याद्यथोक्तानां गुणानां चोत्तमादिता ।

एवं प्रागुक्तानां नायकनायिकादूतदूतीमन्त्रिपुरोहितादीनामुत्तममध्यमा-  
धमभावेन त्रिरूपता । उत्तमादिभावश्च न गुणसंख्योपचयापचयेन किं त-  
र्हि गुणातिशयतारतम्येन ।

एवं नाट्ये विधातव्यो नायकः संपरिच्छदः ॥ ४६ ॥

उक्तो नायकः । तद्व्यापारस्तूच्यते—

तद्व्यापारात्मिका वृत्तिश्चतुर्धा तत्र कैशिकी ।

गीतनृत्यविलासाद्यैर्मृदुः शृङ्गारचेष्टितैः ॥ ४७ ॥

प्रवृत्तिरूपो नेतृव्यापारस्वभावो वृत्तिः । सा च कैशिकी-सात्त्वती-आर-  
भटी-भारतीभेदाच्चतुर्विधा । तासां गीतनृत्यविलासकामोपभोगाद्युपलक्ष्यमाणो  
मृदुः शृङ्गारी कामफलावच्छिन्नो व्यापारः कैशिकी । सा तु—

नर्मतत्स्फुटतत्स्फोटतद्रभैश्चतुरङ्गिका ।

तदित्यनेन सर्वत्र नर्म परामृश्यते ।

तत्र—

वैदग्ध्यक्रीडितं नर्म मियोपच्छन्दनात्मकम् ॥ ४८ ॥

हास्येनैव सशृङ्गारभयेन विहितं त्रिधा ।

आत्मोपक्षेपसंभोगमानैः शृङ्गार्यपि त्रिधा ॥ ४९ ॥

शुद्धमङ्गं भयं द्वेधा त्रेधा वाग्वेषचेष्टितैः ।

सर्वं सहास्यमित्येवं नर्माष्टादशोदितम् ॥ ५० ॥

अग्राम्य इष्टजनावर्जनरूपः परिहासो नर्म । तच्च शुद्धहास्येन सशृङ्गार-

हास्येन सभयहास्येन च रचितं त्रिविधम् । शृङ्गारवदपि स्वानुरागनिवेदनसं-  
भोगेच्छाप्रकाशन-सापराधप्रियप्रतिभेदनैस्त्रिविधमेव । भयनमपि शुद्धरसा-  
न्तराङ्गभावाद्विविधम् । एवं षड्विधस्य प्रत्येकं वाग्वेषचेष्टाव्यतिकरेणाष्टाद-  
शविधत्वम् ।

तत्र वचोहास्यनर्म यथा—

‘पत्युः शिरश्चन्द्रकलामनेन स्पृशेति सख्या परिहासपूर्वम् ।

सा रञ्जयित्वा चरणौ कृताशीर्मात्येन तां निर्वचनं जघान ॥’

वेषनर्म यथा नागानन्दे विदूषकशेखरकव्यतिकरे । क्रियानर्म यथा मा

विकाग्निमित्र उत्खन्नायमानस्य विदूषकस्योपरि निपुणिका सर्पभ्रमकारणं  
दण्डकाष्ठं पातयति । एवं वक्ष्यमाणेष्वपि वाग्वेषचेष्टापरत्वमुदाहार्यम् ।

शृङ्गारवदात्मोपक्षेपनर्म यथा—

‘मध्याह्नं गमय त्यज श्रमजलं स्थित्वा पयः पीयतां

मा शून्येति विमुञ्च पान्थ विवशः शीतः प्रपामण्डपः ।

तामेव स्मर घस्मरस्मरशरत्रस्तां निजप्रेयसीं

त्वच्चित्तं तु न रञ्जयन्ति पथिक प्रायः प्रपापालिकाः ॥’

संभोगनर्म यथा—

‘सालोए च्छिअ सूरै घरिणी घरसामिअस्स वेत्तूण ।

णेच्छन्तस्स वि पाए धुअइ हसन्ती हसन्तस्स ॥’

माननर्म यथा—

‘तदवितथमवादीर्यन्मम त्वं प्रियेति

प्रियजनपरिभुक्तं यदुकूलं दधानः ।

मदधिवसति मागाः कामिनां मण्डनश्री-

व्रजति हि सफलत्वं वल्लभालोकेन ॥’

भयनर्म यथा रत्नावल्यामालेख्यदर्शनावसरे—‘सुसंगता—जाणिदो  
मए एसो सव्वो वुत्तन्तो समं चित्तफलहएण । ता देवीए णिवेदइस्सम् ।’  
इत्यादि ।

१. ‘सालोके एव सूर्ये गृहिणी गृहस्वामिकस्य गृहीत्वा ।

अनिच्छतोऽपि पादौ धुनोति हसन्ती हसतः ॥’ इति च्छाया.

२. ‘ज्ञातो मर्येष सर्वो वृत्तान्तः सह चित्रफलकेन । तदेवै निवेदयिष्यामि ।’ इति च्छाया.

शृङ्गाराङ्गं भयनम् । यथा ममैव—

‘अभिव्यक्तालीकः सकलविफलोपायविभव-

श्चिरं ध्यात्वा सद्यः कृतकृतकसंरम्भनिपुणम् ।

इतः पृष्ठे पृष्ठे किमिदमिति संत्रास्य सहसा

कृताश्लेषं धूर्तः स्मितमधुरमालिङ्गति वधूम् ॥’

अथ नर्मस्फिञ्जः—

नर्मस्फिञ्जः सुखारम्भो भयान्तो नवसंगमे ।

यथा मा. पि. गि. गि. संकेते नायकमभिसृतायां नायिकायां नायकः—

‘विस्तृतं सुन्दरि संगमसाध्वसं ननु चिरात्प्रभृति प्रणयान्मुखे ।

परिगृहाण गते सहकारतां त्वमितिमुक्तलताचरितं मयि ॥’

मालविका—‘भेडा, देवीए भयेण अत्तणो वि पिअं काउं ण पारेमि’ इत्यादि ।

अथ नर्मस्फोटः—

नर्मस्फोटस्तु भावानां सूचितोऽल्परसो लवैः ॥ ५१ ॥

यथा मालतीमाधवे—‘मकरन्दः—

गमनमलसं शून्या दृष्टिः शरीरमसौष्ठवं

श्वसितमधिकं किं न्वेतत्स्यात्किमन्यदतोऽथ वा ।

भ्रमति भुवने कन्दर्पाज्ञा विकारि च यौवनं

ललितमधुरास्ते ते भावाः क्षिपन्ति च धीरताम् ॥’

इत्यत्र गमनादिभिर्भावलेखैर्माधवस्य मालत्यामनुरागः स्तोकः प्रकाश्यते ।

अथ नर्मगर्भः—

छन्ननेत्रप्रतीचारो नर्मगर्भोऽर्थहेतवे ।

अङ्गैः सहास्यनिर्हास्यैरेभिरेषात्र कैशिकी ॥ ५२ ॥

यथामरुशतके—

‘दृष्ट्वाकासनसंस्थिते प्रियतमे पश्चादुपेत्यादरा-

देकस्या नयने निमील्य विहितक्रीडानुबन्धच्छलः ।

५. ‘नर्मस्फिञ्जः’ इति पाठः. २. ‘भर्तः’, देव्या भयेनात्मनोऽपि प्रियं कर्तुं न वारयामि ।’ इति च्छाया.

ईषद्वकितकन्धरः सपुलकः प्रेमोलसन्मानसा-

मन्तर्हसलसत्कपोलफलकां धूर्तोऽपरां चुम्बति ॥'

यथा प्रियर्दाशिकायां गर्भाङ्गे वत्सराजवेषसुसंगतास्थाने साक्षाद्वत्सराज-  
प्रवेशः ।

अथ सात्त्वती—

विशोका सात्त्वती सत्त्वशौर्यत्यागदयाजवैः ।

संलापोत्थापकावस्यां साङ्घात्यः परिवर्तकः ॥ ५३ ॥

शोकहीनः सत्त्वशौर्यत्यागदयाहर्षादिभावोत्तरो नायकव्यापारः सात्त्वती ।  
तदङ्गानि च संलापोत्थापकसाङ्घात्यपरिवर्तकाख्यानि ।

तत्र—

संलापको गभीरोक्तिर्नानाभावरसा मिथः ।

यथा वीरचरिते—'रामः—अयं स यः किल सपरिवारकार्तिकेयविज-  
यावर्जितेन भगवता नीललोहितेन परिवत्सरसहस्रान्तेवासिने तुभ्यं प्रसादी-  
कृतः परशुः । परशुरामः—राम राम दाशरथे, स एवायमाचार्यपादानां  
प्रियः परशुः ।

शस्त्रप्रयोगखुरलीकलहे गणानां

सैन्यैर्वृतो विजित एव मया कुमारः ।

एतावतापि परिरभ्य कृतप्रसादः

प्रादादमुं प्रियगुणो भगवान्गुरुर्मे ॥'

इत्यादिनानाप्रकारभावरसेन रामपरशुरामयोरन्योन्यगभीरवचसा संलाप इति ।

अथोत्थापकः—

उत्थापकस्तु यत्रादौ युद्धायोत्थापयेत्परम् ॥ ५४ ॥

यथा वीरचरिते—

'आनन्दाय च विस्मयाय च मया दृष्टोऽसि दुःखाय वा

वैतृष्ण्यं नु कुतोऽद्य संप्रति मम त्वद्दर्शने चक्षुषः ।

त्वत्सांगत्यसुखस्य नास्मि विषयः किं वा बहुव्याहृतै-

रस्मिन्विश्रुतजामदग्न्यविजये बाहौ धनुर्जृम्भताम् ॥'

अथ साङ्घात्यः—

मन्त्रार्थदैवशक्त्यादेः साङ्घात्यः सङ्घभेदनम् ।

मन्त्रशक्त्या । यथा मुद्राराक्षसे राक्षससहायादीनां चाणक्येन स्ववुद्ध्या भेदनम् । अर्थशक्त्या तत्रैव । यथा पर्वतकाभरणस्य राक्षसहस्तगमनेन मलय-केतुसहोत्थायिभेदनम् । दैवशक्त्या तु । यथा रामायणे रामस्य दैवशक्त्या रा-वणाद्विभीषणस्य भेद इत्यादि ।

अथ परिवर्तकः—

प्रारब्धोत्थानकार्यान्यकरणात्परिवर्तकः ॥ ५५ ॥

प्रस्तुतस्योद्योगकार्यस्य परित्यागेन कार्यान्तरकरणं परिवर्तकः । यथा वीरचरिते—

‘हेरम्बदन्तमुसलोह्निखितैकभित्ति  
वक्षो विशाखविशिखत्रणलाञ्छनं मे ।  
रोमाञ्चकञ्चुकितमद्भुतवीरलाभा-  
द्यत्सत्यमद्य परिरब्धुमिवेच्छति त्वाम् ॥

रामः—भगवन्, परिरम्भणमिति प्रस्तुतप्रतीपमेतत् ।’ इत्यादि ।

सात्त्वतीमुपसंहरन्नारभटीलक्षणमाह—

एभिरङ्गैश्चतुर्थेयं सात्त्वत्यारभटी पुनः ।  
मायेन्द्रजालसङ्ग्रामक्रोधोद्भ्रान्तादिचेष्टितैः ॥ ५६ ॥  
संक्षिप्तिका स्यात्संफेटो वस्तूत्थानावपातने ।

मायामन्त्रबलेनाविद्यमानवस्तुप्रकाशनम् । तन्त्रबलादिन्द्रजालम् ।

तत्र—

संक्षिप्तवस्तुरचना संक्षिप्तिः शिल्पयोगतः ॥ ५७ ॥  
पूर्वेनेतृनिवृत्त्यान्ये नेत्रन्तरपरिग्रहः ।

मृद्वंशदलचर्मादिद्रव्ययोगेन वस्तूत्थापनं संक्षिप्तिः । यथोदयनचरिते किलिङ्गहस्तिप्रयोगः । पूर्वनायकावस्थानिवृत्त्यावस्थान्तरपरिग्रहमन्ये संक्षिप्तिकां मन्यन्ते । यथा वालिनिवृत्त्या सुग्रीवः । यथा च परशुरामस्यौदृत्य-निवृत्त्या शान्तत्वापादनं ‘पुण्या ब्राह्मणजातिः—’ इत्यादिना ।

अथ संफेटः—

संफेटस्तु समाघातः कुद्धसंरब्धयोर्द्वयोः ॥ ५८ ॥

यथा माधवाचोरघण्टयोर्मालतीमाधवे । इन्द्रजित्कुक्ष्मणयोश्च रामायणप्र-तिबद्धवस्तुषु ।

अथ वस्तूत्थापनम्—

मायाद्युत्थापितं वस्तु वस्तूत्थापनमिष्यते ।

यथोदात्तराघवे—

‘जीयन्ते जयिनोऽपि सान्द्रतिमिरव्रातैर्विन्द्यापिभि-  
र्भास्वन्तः सकला रवेरपि रुचः कस्मादकस्मादमी ।  
एताश्चोग्रकबन्धरन्ध्ररुधिरैराध्मायमानोदरा  
मुञ्चन्त्याननकन्दरानलमुचस्तीव्रा रवाः केरवाः ॥’

इत्यादि ।

अथावपातः—

अवपातस्तु निष्कामप्रवेशत्रासविद्रवैः ॥ ५९ ॥

यथा रत्नावल्याम्—

‘कण्ठे कृत्वावशेषं कनकमयमधः शृङ्खलादाम कर्ष-  
न्कान्त्वा द्वाराणि हेलवलचरणवलत्किङ्किणीचक्रवालः ।  
दत्तातङ्को गजानामनुसृतसरणिः संभ्रमादश्वपालैः  
प्रभ्रष्टोऽयं प्लवङ्गः प्रविशति नृपतेर्मन्दिरं मन्दुरातः ॥’  
नष्टं वर्षवरैर्मेनुष्यगणनाभावादकृत्वा त्रपा-  
मन्तः कञ्चुकिकञ्चुकस्य विशति त्रासादयं वामनः ।  
पर्यन्ताश्रयिभिर्निजस्य सदृशं नाम्नः किरातैः कृतं  
कुब्जा नीचतयैव यान्ति शनैरात्मेक्षणाशङ्किनः ॥’

यथा च प्रियदर्शनायां प्रथमेऽङ्के विन्ध्यकेत्ववस्कन्दे ।

उपसंहरति—

एभिरङ्गैश्चतुर्थेयं नार्थवृत्तिरतः परा ।

चतुर्थी भारती सापि वाच्या नाटकलक्षणे ॥ ६० ॥

कैशिकीं साच्वतीं चार्थवृत्तिमारभटीमिति ।

पठन्तः पञ्चमीं वृत्तिमौद्गटाः प्रतिजानते ॥ ६१ ॥

सा तु लक्ष्ये कचिदपि न दृश्यते न चोपपद्यते रसेषु हास्यादीनां भार-  
त्यात्मकत्वात् । नीरसस्य च काव्यार्थस्य चाभावात् । तिस्र एवैता अर्थवृ-  
त्तयः । भारती तु शब्दवृत्तिरामुखसङ्गत्वात्तत्रैव वाच्या ।

वृत्तिनियममाह—

शृङ्गारे कैशिकी वीरे साच्चत्यारभटी पुनः ।

रसे रौद्रे च बीभत्से वृत्तिः सर्वत्र भारती ॥ ६२ ॥

देशभेदभिन्नवेषादिस्तु नायकादिव्यापारः प्रवृत्तिरित्याह—

देशभाषाक्रियावेषलक्षणाः स्युः प्रवृत्तयः ।

लोकादेवावगम्यैता यथौचित्यं प्रयोजयेत् ॥ ६३ ॥

तत्र पाठ्यं प्रति विशेषः—

पाठ्यं तु संस्कृतं नृणामनीचानां कृतात्मनाम् ।

लिङ्गिनीनां महादेव्या मन्त्रिजावेश्ययोः कचित् ॥ ६४ ॥

कचिदिति देवीप्रभृतीनां संबन्धः ।

स्त्रीणां तु प्राकृतं प्रायः सौरसेन्यधमेषु च ।

प्रकृतेरागतं प्राकृतम् । प्रकृतिः संस्कृतं तद्भवं तत्समं देशीत्यनेकप्रका-  
रम् । सौरसेनी मागधी च स्वशास्त्रनियते ।

पिशाचात्यन्तनीचादौ पैशाचं मागधं तथा ॥ ६५ ॥

यद्देशं नीचपात्रं यत्तद्देशं तस्य भाषितम् ।

कार्यतश्चोत्तमादीनां कार्यो भाषाव्यतिक्रमः ॥ ६६ ॥

स्पष्टार्थमेतत् ।

आमन्त्र्यामन्त्रकौचित्येनामन्त्रणमाह—

भगवन्तो वरैर्वाच्या विद्वद्देवर्षिलिङ्गिनः ।

विप्रामात्याग्रजाश्चार्या नटीसूत्रभृतौ मिथः ॥ ६७ ॥

आर्याविति संबन्धः ।

रथी सूतेन चायुष्मान्पूज्यैः शिष्यात्मजानुजाः ।

वत्सेति तातः पूज्योऽपि सुगृहीताभिधस्तु तैः ॥ ६८ ॥

अपिशब्दात्पूज्येन शिष्यात्मजानुजास्तातेति वाच्याः । सोऽपि तैस्ताते-  
ति सुगृहीतनामा चेति ।

भावोऽनुगेन सूत्री च मार्षेत्येतेन सोऽपि च ।

सूत्रधारः पारिपार्श्वकेन भाव इति वक्तव्यः । स च सूत्रिणा मार्ष इति ।

देवः स्वामीति नृपतिर्भृत्यैर्भट्टेति चाधमैः ॥ ६९ ॥

आमन्त्रणीयाः पतिवज्ज्येष्ठमध्याधमैः स्त्रियः ।

विद्वद्देवादिस्त्रियो भर्तृवदेव देवरादिभिर्वाच्याः ।

तत्र स्त्रियं प्रति विशेषः ।

समा हलेति प्रेष्या च हञ्जे वेश्याञ्जुका तथा ॥ ७० ॥

कुट्टिन्यम्बेत्यनुगतैः पूज्या वा जरती जनैः ।

विदूषकेण भवती राज्ञी चेटीति शब्दयते ॥ ७१ ॥

पूज्या जरती अम्बेति । स्पष्टमन्यत् ।

चेष्टागुणोदाहृतिसत्त्वभावानशेषतो नेतृदशाविभिन्नान् ।

को वक्तुमीशो भरतो न यो वा यो वा न देवः शशिखण्डमौलिः ॥ ७२ ॥

दिङ्मात्रं दर्शितमित्यर्थः । चेष्टा लीलाद्याः, गुणा विनयाद्याः, उदाहृतयः  
संस्कृतप्राकृताद्या उक्तयः, सत्त्वं निर्विकारात्मकं मनोभावः सत्त्वस्य प्रथमो  
विकारस्तेन हावादयो ह्युपलक्षिताः ॥

इति श्रीविष्णुसूक्तोर्धनिकस्य कृतौ दशरूपावलोक्ये

नेतृप्रकाशो नाम द्वितीयः प्रकाशः समाप्तः ।

१. 'अर्जका' इति पाठः. २. 'कुट्टिन्यनुगतैः पूजा अम्बेति युवतीजनैः' इति पाठः.  
३. 'राज्ञी' इति पाठः.



तृतीयः प्रकाशः ।

बहुवक्तव्यतया रसविचारातिलङ्घनेन वस्तुनेतरसानां विभज्य नाटका-  
दिषूपयोगः प्रतिपाद्यते --

प्रकृतित्वादथान्येषां भूयो रमयग्निराहान् ।  
संपूर्णलक्षणत्वाच्च पूर्वं नाटकमुच्यते ॥ १ ॥

उद्दिष्टधर्मकं हि नाटकमनुद्दिष्टधर्माणां प्रकरणादीनां प्रकृतिः । शेषं  
प्रतीतम् ।

तत्र—

पूर्वरङ्गं विधायदौ सूत्रधारे विनिर्गते ।  
प्रविश्य तद्वदपरः काव्यमास्थापयेन्नटः ॥ २ ॥

पूर्वं रज्यतेऽस्मिन्निति पूर्वरङ्गो नाट्यशाला । तत्स्थप्रथमप्रयोगव्युत्था-  
पनादौ पूर्वरङ्गता । तं विधाय विनिर्गते प्रथमं सूत्रधारे तद्वदेव वैष्णवस्था-  
नकादिना प्रविद्यान्यो नटः काव्यार्थं स्थापयेत् । स च काव्यार्थस्थापना-  
भूचनास्थापकः ।

दिव्यमर्त्यं स तद्वृषो मिश्रमन्यतरस्तयोः ।  
सूचयेद्वस्तु बीजं वा मुखं पात्रमथापि वा ॥ ३ ॥

स स्थापको दिव्यं वस्तु दिव्यो भूत्वा मर्त्यं च मर्त्यरूपो भूत्वा मिश्रं  
च दिव्यमर्त्ययोरन्यतरो भूत्वा सूचयेत् । वस्तु बीजं मुखं पात्रं वा । वस्तु  
यथोदात्तराघवे—

‘रामो मूर्ध्नि निधाय काननमगान्मालामिवाज्ञां गुरो-  
स्तद्भक्त्या भरतेन राज्यमखिलं मात्रा सहैवोज्जितम् ।  
तौ गुप्तीवत्रिषीपणावनुगतौ नीतौ परां संपदं  
प्रोद्वृत्ता दशकन्धरप्रभृतयो ध्वस्ताः समस्ता द्विषः ॥’  
बीजं यथा रत्नावल्याम्—

‘द्वीपादन्यस्मादपि मध्यादपि जलनिधेर्दिशोऽप्यन्तात् ।  
आनीय झटिति वटयति विधिरभिमतमभिमुखीभूतः ॥’  
मुखं यथा—

‘आसादितप्रकटनिर्मलचन्द्रहासः  
प्रातः शरत्समय एष विशुद्धकान्तः ।

उत्त्वाय गाढतमसं घनकालमुग्रं  
रामो दशास्यमिव संभृतबन्धुजीवः ॥'

पात्रं यथा शाकुन्तले—

‘तवास्मि गीतरागेण हारिणा प्रसभं हृतः ।  
एष राजेव दुष्यन्तः सारङ्गेणातिरंहसा ॥’

रङ्गं प्रसाद्य मधुरैः श्लोकैः काव्यार्थसूचकैः ।  
ऋतुं कंचिदुपादाय भारतीं वृत्तिमाश्रयेत् ॥ ४ ॥

रङ्गस्य प्रशस्तिं काव्यार्थानुगतार्थैः श्लोकैः कृत्वा—  
‘औत्सुक्येन कृतत्वरं सहभुवा व्यावर्तमाना हिया  
तैस्तैर्बन्धुवधूजनस्य वचनैर्नीताभिमुख्यं पुनः ।  
दृष्ट्वाग्रे वरमात्तसाध्वसरसा गौरी नवे संगमे  
सरोहत्पुलका हरेण हसता श्लिष्टा शिवा पातु वः ॥’

इत्यादिभिरेव भारतीं वृत्तिमाश्रयेत् ।

सा तु—

भारती संस्कृतप्रायो वाग्व्यापारो नटाश्रयः ।  
भेदैः प्ररोचनायुक्तैर्वीथीप्रहसनामुखैः ॥ ५ ॥

पुरुषविशेषप्रयोज्यः संस्कृतबहुलो वाक्प्रधानो नटाश्रयो व्यापारो भारती ।  
प्ररोचना वीथीप्रहसनामुखानि चास्यामङ्गानि ।

यथोद्देशं लक्षणमाह—

उन्मुखीकरणं तत्र प्रशंसातः प्ररोचना ।

प्रस्तुतार्थप्रशंसनेन श्रोतॄणां प्रवृत्त्युन्मुखीकरणं प्ररोचना । यथा रत्ना-  
वल्याम्—

‘श्रीहर्षो निपुणः कविः परिषद्व्येषा गुणग्राहिणी  
लोके हारि च वत्सराजचरितं नाट्ये च दक्षा वयम् ।  
वस्त्वैकैकमपीह वाञ्छितफलप्राप्तेः पदं किं पुन-  
र्मद्भाग्योपचयादयं समुदितः सर्वो गुणानां गणः ॥’  
वीथी प्रहसनं चापि स्वप्रसङ्गेऽभिधास्यते ॥ ६ ॥  
वीथ्यङ्गान्यामुखाङ्गत्वादुच्यन्तेऽत्रैव तत्पुनः ।

सूत्रधारो नटीं ब्रूते मार्षं वाथ विदूषकम् ॥ ७ ॥  
स्वकार्यं प्रस्तुताक्षेपि चित्रोक्त्या यत्तदामुखम् ।  
प्रस्तावना वा तत्र स्युः कथोद्धातः प्रवृत्तकम् ॥ ८ ॥  
प्रयोगातिशयश्चाथ वीथ्यङ्गानि त्रयोदश ।

तत्र कथोद्धातः—

स्वेतिवृत्तसमं वाक्यमर्थं वा यत्र सूत्रिणः ॥ ९ ॥  
गृहीत्वा प्रविशेत्पात्रं कथोद्धातो द्विथैव सः ।

वाक्यं यथा रत्नावल्याम्—‘यौगंधरायणः—‘द्रोपादन्यमादपि—’  
इति ।

वाक्यार्थं यथा वेणीसंहारे—‘भीमः—

‘निर्वाणवैरिदहनाः प्रशमादरीणां  
नन्दन्तु पाण्डुनयाः सह केशवेन ।  
रक्तप्रसाधितभुवः क्षतविग्रहाश्च  
स्वस्था भवन्तु कुरुराजसुताः सभृत्याः ॥’

ततोऽर्थेनाह—‘भीमः—

लाक्षागृहानलविषान्नसभाप्रवेशैः  
प्राणेषु वित्तनिचयेषु च नः प्रहृत्य ।  
आकृष्टपाण्डवधूपरिधानकेशाः  
स्वस्था भवन्तु मयि जीवति धार्तराष्ट्राः ॥’

अथ प्रवृत्तकम्—

कालसाम्यसमाक्षिसप्रवेशः स्यात्प्रवृत्तकम् ॥ १० ॥

प्रवृत्तकालसमानगुणवर्णनया सूचितपात्रप्रवेशः प्रवृत्तकम् । यथा—

‘आसादितप्रकटनिर्मलचन्द्रहासः  
प्रातः शरत्समय एष विशुद्धकान्तः ।  
उत्खाय गाढतमसं घनकालमुग्रं  
रामो दशास्यमिव संभृतबन्धुजीवः ॥

(ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टो रामः ।)

१. ‘वाक्यं वाक्यार्थमथवा प्रस्तुतं यत्र सूत्रिणः’ इति पाठः.

अथ प्रयोगातिशयः—

एषोऽयमित्युपक्षेपात्सूत्रधारप्रयोगतः ।

पात्रप्रवेशो यत्रैष प्रयोगातिशयो मतः ॥ ११ ॥

यथा—‘एष राजेव दुष्यन्तः’ इति ।

अथ वीथ्यङ्गानि—

उद्धात्यकावलगिते प्रपञ्चत्रिगते छलम् ।

वाकेल्यधिबले गण्डमवस्यन्दिदनालिके ॥ १२ ॥

असत्प्रलापव्याहारमृदवानि त्रयोदश ।

तत्र—

गूढार्थपदपर्यायमाला प्रश्नोत्तरस्य वा ॥ १३ ॥

यत्रान्योन्यं समालापो द्वेधोद्धात्यं तदुच्यते ।

गूढार्थं पदं तत्पर्यायश्चेत्येवं माला । प्रश्नोत्तरं चेत्येवं वा माला । द्वयो-  
रुक्तिप्रत्युक्तौ तद्विविधमुद्धात्यकम् । तत्राद्यं विक्रमोर्वश्यां यथा—‘विदू-  
षकः—‘भो वयस्स, को एसो कामो जेण तुमं पि दूमिज्जेसे । सो किं  
पुरिसो आदु इत्थिअ त्ति । राजा—सखे,

मनोजातिरनाधीना सुखेप्वेव प्रवर्तते ।

स्नेहस्य ललितो मार्गः काम इत्यभिधीयते ॥

विदूषकः—‘एवं पि ण जाणे । राजा—वयस्य, इच्छाप्रभवः स इति ।

विदूषकः—‘किं जो जं इच्छदि सो तं कामेदित्ति । राजा—अथ किम् ।

विदूषकः—‘तौ जाणिदं जह अहं सूअआरसालाए भोअणं इच्छामि ।’

द्वितीयं यथा पाण्डवानन्दे—

‘का श्लाघ्या गुणिनां क्षमा परिभवः को यः स्वकुल्यैः कृतः

किं दुःखं परसंश्रयो जगति कः श्लाघ्यो य आश्रीयते ।

१. ‘भो वयस्य, क एष कामो येन त्वमपि दूयसे । स किं पुरुषोऽथवा स्त्रीनि ।’  
इति च्छाया. २. ‘एवमपि न जानामि ।’ इति च्छाया. ३. ‘किं यो यदिच्छति  
स तत्काममयीनि ।’ इति च्छाया. ४. ‘तज्ज्ञातं यथाहं सूपकारशालायां भोजन-  
मिच्छामि ।’ इति च्छाया.

को मृत्युर्व्यसनं शुचं जहति के यैर्निर्जिताः शत्रवः  
कैर्विज्ञातमिदं विराटनगरे छन्नस्थितैः पाण्डवैः ॥'

अथावलगितम्—

यत्रैकत्र समावेशात्कार्यमन्यत्प्रसाध्यते ॥ १४ ॥

प्रस्तुतेऽन्यत्र वान्यत्स्यात्तच्चावलगितं द्विधा ।

तत्राद्यं यथोत्तरचरिते समुत्पन्नवनविहारगर्भदोहदायाः सीताया दोह-  
दकार्येऽनुप्रविश्य जनापवादादरण्ये त्यागः । द्वितीयं यथा छलितरामे—  
'रामः—लक्ष्मण, तात वियुक्तामयोध्यां विमानस्थो नाहं प्रवेष्टुं शक्नोमि ।  
तदवतीर्य गच्छामि ।

कोऽपि मिहाग्नमग्राधः स्थितः पादुकयोः पुरः ।

जटावानक्षमाली च चामरी च विराजते ॥'

इति भरतदर्शनकार्यसिद्धिः ।

अथ प्रपञ्चः—

असद्भूतं मिथःस्तोत्रं प्रपञ्चो हास्यकृन्मतः ॥ १५ ॥

असद्भूतेनार्थेन पारदार्यादिनैपुण्यादिना यान्योन्यस्तुतिः स प्रपञ्चः ।

यथा कर्पूरमञ्जर्याम्—'भैरवानन्दः—

रैण्डा चण्डा दिक्खिदा धम्मदारा मज्जं मांसं पिज्जए खज्जए अ ।

भिक्षा भोज्जं चम्मखण्डं च सेज्जा कोलो धम्मो कस्स णो होइ रम्मो ॥'

अथ त्रिगतम्—

श्रुतिसाम्यादनेकार्थयोजनं त्रिगतं लिह ।

नटादित्रितयालापः पूर्वरङ्गे तदिष्यते ॥ १६ ॥

यथा विक्रमोर्वश्याम्—

'मत्तानां कुसुमरसेन षट्पदानां

शब्दोऽयं परभृतनाद एष धीरः ।

कैलासे सुरगणसेविते समन्ता-

त्किन्नर्यः कलमधुराक्षरं प्रगीताः ॥'

१. 'असद्भूतमिथःस्तोत्रं' इति पाठः.

२. 'रैण्डा चण्डा दीक्षिता धर्मदारा मद्यं मांसं पीयते खाद्यते च ।

भिक्षा भोज्यं चर्मखण्डं च शय्या कौलो धर्मः कस्य न भवति रम्यः ॥' इति  
चलाया.

अथ छलनम्—

प्रियाभैरप्रियैर्वाक्यैर्विलोभ्य छलनाच्छलम् ।

यथा वेणीसंहारे—‘भीमार्जुनौ—

कर्ता द्यूतच्छलानां जनुमयशरणोद्दीपनः सोऽभिमानो

राजा दुःशासनोर्दुरुरुजशतस्याङ्गराजस्य मित्रम् ।

कृष्णाकेशोत्तरीयव्यपनयनपटुः पाण्डवा यस्य दासाः

कास्ते दुर्योधनोऽसौ कथयत पुरुषा द्रष्टुमभ्यागतौ स्वः ॥’

अथ वाक्केली—

विनिवृत्त्यास्य वाक्केली द्वित्रिः प्रत्युक्तितोऽपि वा ॥ १७ ॥

अस्येति वाक्यस्य प्रकान्तस्य साकाङ्क्षस्य विनिवर्तनं वाक्केली । द्वित्रिर्वा  
उक्तिप्रत्युक्तयः । तत्राद्या यथोत्तरचरिते—‘वासन्ती—

त्वं जीवितं त्वमसि मे हृदयं द्वितीयं

त्वं कौमुदी नयनयोरमृतं त्वमङ्गे ।

इत्यादिभिः प्रियशतैरनुरुध्य मुग्धां

तामेव शान्तमथवा किमतः परेण ॥’

उक्तिप्रत्युक्तितो यथा रत्नावल्याम्—‘विदूषकः—‘भोदि मअणिए,  
मं पि एदं चच्चरिं सिकखःवेहि । मदनिका—‘हंदास, ण कखु एसा चच्चरी ।  
दुवदिखण्डअं कखु एदम् । विदूषकः—‘भोदि, किं एदिणा खण्डेण  
मोदआ करीअन्ति । मदनिका—‘णहि । पढीअदि कखु एदम् ।’ इत्यादि ।

अथाधिबलम्—

अन्योन्यवाक्याधिक्योक्तिः स्पर्धयाधिबलं भवेत् ।

यथा वेणीसंहारे—‘अर्जुनः—

सकलरिपुजयाशा यत्र बद्धा सुतैस्ते

तृणमिव परिभूतो यस्य गर्वेण लोकः ।

रणशिरसि निहन्ता तस्य राधासुतस्य

प्रणमति पितरौ वां मध्यमः पाण्डुपुत्रः ॥’

१. ‘छलना’ इति पाठः. २. ‘भवति मदनिके, मामप्येतां चर्चरीं शिक्षय ।’ इति  
च्छाया. ३. ‘हताश, न खल्वेषा चर्चरी । द्विपदीखण्डकं खल्वेतत् ।’ इति च्छाया.  
४. ‘भवति, किमेतेन खण्डेन मोदकाः कियन्ते ।’ इति च्छाया. ५. ‘नहि । पश्यते  
खल्वेतत् ।’ इति च्छाया.

इत्युपक्रमे 'राजा—अरे, नाहं भवानिव विकृत्यनाप्रगल्भः । किंतु ।

द्रक्ष्यन्ति न चिरात्सुप्तं बान्धवास्त्वां रणाङ्गणे ।

मद्गदाभिन्नवक्षोऽस्थिवेणिकाभङ्गभीषणम् ॥'

इत्यन्तेन भीमदुर्योधनयोरन्योन्यवाक्यस्याधिक्योक्तिरधिबलम् ।

अथ गण्डः—

गण्डः प्रस्तुतसंबन्धिभिन्नार्थं सहसोदितम् ॥ १८ ॥

यथोत्तरचरिते—'रामः—

इयं गेहे लक्ष्मीरियममृतवर्तिर्नयनयो-

रसावस्याः स्पर्शो वपुषि बहलश्चन्दनरसः ।

अयं बाहुः कण्ठे शिशिरमसृणो मौक्तिकसरः

किमस्या न प्रेयो यदि परमसह्यस्तु विरहः ॥

(प्रविश्य ।) प्रतीहारी—देव, उअत्थिदो । रामः—अयि, कः । प्रती-  
हारी—देवस्स आसण्णपरिचारओ दुम्मुहो ।' इति ।

अथावस्यन्दितम्—

रसोक्तस्यान्यथा व्याख्या यत्रावस्यन्दितं हि तत् ।

यथा छलितरामे—'सीता—जौद, कलं कखु तुहोहिं अजुज्जाए ग-  
न्तव्वम् । तहिं सो राआ विणएण णमिदव्वो । लवः—अम्भ, किमावाभ्यां  
राजोपजीविभ्यां भवितव्यम् । सीता—जौद, सो कखु तुम्हाणं पिदा ।  
लवः—किमावयो रघुपतिः पिता । सीता—(साशङ्कम् ।) जौद, ण कखु  
परं तुम्हाणम् । सअलाए जेव्व पुहवीए ।' इति ।

अथ नालिका—

सोपहासा निगूढार्था नालिकैव प्रहेलिका ॥ १९ ॥

यथा मुद्राराक्षसे—'चरः—'हंहो बह्मण, मा कुप्प । किं पि तुह

१. 'देव, उपस्थितः ।' इति च्छाया. २. 'देवस्यासन्नपरिचारको दुर्मुखः ।' इति  
च्छाया. ३. 'जात, कल्यं खलु युवाभ्यामयोध्यायां गन्तव्यम् । तर्हि स राजा वि-  
नयेन नमितव्यः ।' इति च्छाया. ४. 'जात, स खलु युवयोः पिता ।' इति च्छाया.  
५. 'जात, न खलु परं युवयोः । सकलाया एव पृथिव्याः ।' इति च्छाया. ६. 'हंहो  
ब्राह्मण, मा कुप्य । किमपि तवोपाध्यायो जानाति । किमप्यस्मादशा जना जानन्ति ।'  
इति च्छाया.

उअज्झाओ जाणादि । किं पि अद्वाग्मिा जणा जाणन्ति । शिष्यः—  
किमस्मदुपाध्यायस्य सर्वज्ञत्वमपहर्तुमिच्छसि । चरः—यदि दे उवज्झाओ  
सव्वं जाणादि ता जाणादु दाव कस्स चन्दो अणभिप्पेदो त्ति । शिष्यः—  
किमेनेन ज्ञातेन भवति ।' इत्युपक्रमे 'चाणक्यः—चन्द्रगुप्तादपरक्तान्पुरु-  
पाज्जानामि ।' इत्युक्तं भवति ।

अथासत्प्रलापः—

असंबद्धकथाप्रायोऽसत्प्रलापो यथोत्तरः ।

ननु चासंबद्धार्थत्वेऽसंगतिर्नाम वाक्यदोष उक्तः । तत्र । उत्स्वप्ना-  
यितमदोन्मादशैशवादीनामसंबद्धप्रलापितैव विभावः । यथा—

‘अर्चिष्मन्ति विदार्य वक्रकुहराण्यासृक्तो वासुके-

रङ्गुल्या विषकर्तुराङ्गणयतः संस्पृश्य दन्ताङ्कुरान् ।

एकं त्रीणि नवाष्ट सप्त षडिति प्रवृत्तमङ्ग्याक्रमा

वाचः क्रौञ्चरिपोः शिशुत्वविकलाः श्रेयांसि पुष्पन्तु वः ॥’

यथा च—

‘हंस प्रयच्छ मे कान्तां गतिस्तस्यास्त्वया हता ।

विभावितैकदेशेन देयं यदभियुज्यते ॥’

यथा वा—

‘भुक्ता हि मया गिरयः स्नातोऽहं वह्निना पिबामि वियत् ।

हरिहरहरिण्यगर्भा मत्पुत्रास्तेन नृत्यामि ॥’

अथ व्याहारः—

अन्यार्थमेव व्याहारो हास्यलोभकरं वचः ॥ २० ॥

यथा मालविकाग्निमित्रे लास्यप्रयोगावसाने—‘(मालविका निर्गन्तुमिच्छति ।)

विदूषकः—मै दाव । उवएससुद्धा गमिस्ससि ।’ इत्युपक्रमे ‘गणदासः—

(विदूषकं प्रति ।) आर्य, उच्यतां यस्त्वया क्रमभेदो लक्षितः । विदूषकः—

पेदमं पच्चसे ब्रह्मणस्स पूआ भोदि । सा तए लङ्घिता । (मालविका स्मरते ।)

१. ‘यदि त उपाध्यायः सर्वं जानाति तज्जानातु तावत्कस्य चन्द्रोऽनभिप्रेत इति ।’  
इति च्छाया. २. ‘यथोत्तरम्’ इति पाठः. ३. ‘मा तावत् । उपदेशशुद्धा गमिष्यसि ।’  
इति च्छाया. ४. ‘प्रथमं प्रत्यूपे ब्राह्मणस्य पूजा भवति । सा तथा लङ्घिता ।’ इति  
च्छाया.



इत्यादिना नायकस्य विश्रब्धनायिकादर्शनप्रयुक्तेन हास्यलोभकारिणा वच-  
नेन व्याहारः ।

अथ मृदवम्—

दोषा गुणा गुणा दोषा यत्र स्युर्मृदवं हि तत् ।

यथा शाकुन्तले—

‘मेदश्छेदकृशोदरं लघु भवत्युत्थानयोग्यं वपुः

सत्त्वानामुपलक्ष्यते विकृतिमच्चित्तं भयक्रोधयोः ।

उत्कर्षः स च धन्विनां यदिषवः सिध्यन्ति लक्ष्ये चले

मिथ्यैव व्यसनं वदन्ति मृगयामीदृग्विनोदः कुतः ॥’

इति मृगयादोषस्य गुणीकारः ।

यथा च—

‘सततमनिर्वृतमानसमायाससहस्रसंकुलक्लिष्टम् ।

गतनिद्रमविश्वासं जीवति राजा जिगीषुरयम् ॥’

इति राज्यगुणस्य दोषीभावः ।

उभयं वा—

‘सन्तः सच्चरितोदयव्यसनिनः प्रादुर्भवद्यन्त्रणाः

सर्वत्रैव जनापवादचकिता जीवन्ति दुःखं सदा ।

अव्युत्पन्नमतिः कृतेन न सता नैवासता व्याकुलो

युक्तायुक्तविवेकशून्यहृदयो धन्यो जनः प्राकृतः ॥’

इति प्रस्तावनाङ्गानि ।

एषामन्यतमेनार्थं पात्रं चाक्षिप्य सूत्रभृत् ॥ २१ ॥

प्रस्तावनान्ते निर्गच्छेत्ततो वस्तु प्रपञ्चयेत् ।

तत्र—

अभिगम्यगुणैर्युक्तो धीरोदात्तः प्रतापवान् ॥ २२ ॥

कीर्तिकामो महोत्साहस्त्रय्यास्त्राता महीपतिः ।

प्रख्यातवंशो राजर्षिर्दिव्यो वा यत्र नायकः ॥ २३ ॥

तत्प्रख्यातं विधातव्यं वृत्तमत्राधिकारिकम् ।

यत्रेतिवृत्ते सत्यवागसंवादकारिनीतिशास्त्रप्रसिद्धाभिगामिकादिगुणयुक्तो  
रामायणमहाभागनादिप्रसिद्धो धीरोदात्तो राजर्षिर्दिव्यो वा नायकस्तत्प्रख्या-  
तमेवात्र नाटक आधिकारिकं वस्तु विधेयमिति ।

यत्तत्रानुचितं किञ्चिन्नायकस्य रसस्य वा ॥ २४ ॥

विरुद्धं तत्परित्याज्यमन्यथा वा प्रकल्पयेत् ।

यथा छद्मना वालिवधो मायुगजेनोदात्तराघवे परित्यक्तः ।

वीरचरिते तु रावणसौहृदेन वाली रामगार्ग्यमाग्नौ रामेण हत इत्य-  
न्यथा कृतः ।

आद्यन्तमेवं निश्चित्य पञ्चधा तद्विभज्य च ॥ २५ ॥

खण्डशः संधिसंज्ञांश्च विभागानपि खण्डयेत् ।

अनौचित्यरसविरोधपरिहारपरिशुद्धीकृतसूचनीयदर्शनीयवस्तुविभागफ-  
लानुसारेणोपकृतबीजबिन्दुपताकाप्रकरीकार्यलक्षणार्थप्रकृतिकं पञ्चावस्थानु-  
गुण्येन पञ्चधा विभजेत् । पुनरपि चैकैकस्य भागस्य द्वादश त्रयोदश च-  
तुर्दशेत्येवमङ्गसंज्ञानां संधीनां विभागान्कुर्यात् ।

चतुःषष्टिस्तु तानि स्युरङ्गानीत्यपरं तथा ॥ २६ ॥

पताकावृत्तमप्यूनमेकाद्यैरनुसंधिभिः ।

अङ्गान्यत्र यथालाभमसंधिं प्रकरीं न्यसेत् ॥ २७ ॥

अपरमपि प्रासङ्गिकमिति वृत्तमेकाद्यैरनुसंधिभिर्न्यूनमिति प्रधानेतिवृत्ता-  
देकद्वित्रिचतुर्भिरनुसंधिभिर्नूतं पताकेतिवृत्तं न्यसनीयम् । अङ्गानि च प्र-  
धानाविरोधे यथालाभं न्यसनीयानि । प्रकरीतिवृत्तं त्वपरिपूर्णसंधि विधेयम् ।  
तत्रैवं विभक्ते—

आदां विष्कम्भकं कुर्यादङ्कं वा कार्ययुक्तितः ।

इयमत्र कार्ययुक्तिः ।

अपेक्षितं परित्यज्य नीरसं वस्तुविस्तरम् ॥ २८ ॥

यदा संदर्शयेच्छेषं कुर्याद्विष्कम्भकं तदा ।

यदा तु सरसं वस्तु मूलादेव प्रवर्तते ॥ २९ ॥

आदावेव तदाङ्कः स्यादामुखाक्षेपसंश्रयः ।

स च—

प्रत्यक्षनेतृचरितो बिन्दुव्याप्तिपुरस्कृतः ॥ ३० ॥

अङ्को नानाप्रकारार्थसंविधानरसाश्रयः ।

रङ्गप्रवेशे साक्षान्निर्दिश्यमाननायकव्यापारो बिन्दूपक्षेपार्थपरिमितोऽनेक-  
प्रयोजनसंविधानरसाधिकरण उत्सङ्ग इवाङ्कः ।

तत्र च—

अनुभावविभावाभ्यां स्थायिना व्यभिचारिभिः ॥ ३१ ॥

गृहीतमुक्तैः कर्तव्यमङ्गिनः परिपोषणम् ।

अङ्गिन एवाङ्गिरसस्थायिनः संग्रहात्स्थायिनेति रसान्तरस्थायिनो ग्रह-  
णम् । गृहीतमुक्तैः परस्परव्यतिकीर्णैरित्यर्थः ।

न चातिरसतो वस्तु दूरं विच्छिन्नतां नयेत् ॥ ३२ ॥

रसं वा न तिरोदध्यादस्वलंकारलक्षणैः ।

कथासंध्यङ्गोपमादिलक्षणैर्भूषणादिभिः ।

एको रसोऽङ्गीकर्तव्यो वीरः शृङ्गार एव वा ॥ ३३ ॥

अङ्गमन्ये रसाः सर्वे कुर्यान्निर्वहणेऽद्भुतम् ।

ननु च रसान्तरस्थायिनेत्यनेनैव रसान्तराणामङ्गत्वमुक्तम् । तन्न । यत्र  
रसान्तरस्थायी स्थानुभावविभावव्यभिचारियुक्तो भूयसोपनिबध्यते तत्र रसा-  
न्तराणामङ्गत्वम् । केवलस्थाय्युपनिबन्धे तु स्थायिनो व्यभिचारितैव ।

दूराध्वानं वधं युद्धं राज्यदेशादिविप्लवम् ॥ ३४ ॥

संरोधं भोजनं स्नानं सुरतं चानुलेपनम् ।

अम्बरग्रहणादीनि प्रत्यक्षाणि न निर्दिशेत् ॥ ३५ ॥

अङ्कनैवोपनिबधीत प्रवेशकादिभिरेव सूचयेदित्यर्थः ।

नाधिकारिवधं कापि त्याज्यमावश्यकं न च ।

अधिकृतनायकवधं प्रवेशकादिनापि न सूचयेत् । आवश्यकं तु देवपि-  
तृकार्याद्यवश्यमेव क्वचित्कुर्यात् ।

एकाहाचरितैर्कार्थमित्थमासन्ननायकम् ॥ ३६ ॥

पात्रैस्त्रिचतुरैरङ्कं तेषामन्तेऽस्य निर्गमः ।

एकदिवसप्रवृत्तैकप्रयोजनसंबद्धमासन्ननायकमबहुपात्रप्रवेशमङ्कं कुर्यात् ।  
तेषां पात्राणामवश्यमङ्कस्यान्ते निर्गमः कार्यः ।

पताकास्थानकान्यत्र बिन्दुरन्ते च बीजवत् ॥ ३७ ॥

एवमङ्काः प्रकर्तव्याः प्रवेशादिपुरस्कृताः ।

पञ्चाङ्कमेतद्वरं दशाङ्कं नाटकं परम् ॥ ३८ ॥

इत्युक्तं नाटकलक्षणम् ।

अथ प्रकरणे वृत्तमुत्पाद्यं लोकसंश्रयम् ।

अमात्यविप्रवणिजामेकं कुर्याच्च नायकम् ॥ ३९ ॥

धीरप्रशान्तं सापायं धर्मकामार्थतत्परम् ।

शेषं नाटकवत्संधिप्रवेशकरसादिकम् ॥ ४० ॥

कविवुद्धिविरचितमितिवृत्तम् । लोकसंश्रयमनुदात्तममात्याद्यन्यतम-  
धीरप्रशान्तनायकं विपदन्तरितार्थसिद्धिं कुर्यात् । प्रकरणे मन्त्री अमात्य एव ।  
सार्थबाहो यणिग्विशेष एवेति । स्पष्टमन्यत् ।

नायिका तु द्विधा नेतुः कुलस्त्री गणिका तथा ।

कचिदेकैव कुलजा वेश्या कापि द्वयं कचित् ॥ ४१ ॥

कुलजाभ्यन्तरा बाह्या वेश्या नातिक्रमोऽनयोः ।

आभिः प्रकरणं त्रेधा संकीर्णं धूर्तसंकुलम् ॥ ४२ ॥

वेशो भृतिः सोऽस्या जीवनमिति वेश्या । तद्विशेषो गणिका । य-  
दुक्तम्—

‘आभिरभ्यर्थिता वेश्या रूपशीलगुणान्विता ।

लभते गणिकाशब्दं स्थानं च जनसंसदि ॥’

एवं च कुलजा वेश्या उभयमिति त्रेधा प्रकरणे नायिका । यथा वेश्यैव  
तरङ्गदत्ते कुलजैव पुष्पदृषितके । ते द्वेऽपि मृच्छकटिकायामिति । कितव-  
द्यूतकारादिधूर्तसंकुलं तु मृच्छकटिकादिवत्संकीर्णप्रकरणमिति ।

अथ नाटिका—

लक्ष्यते नाटिकाप्यत्र संकीर्णान्यनिवृत्तये ।

अत्र केचित्—

‘अनयोश्च बन्धयोगादेको भेदः प्रयोक्तृभिर्ज्ञेयः ।

प्रख्यातस्त्वितरो वा नाटीसंज्ञाश्रिते काव्ये ॥’

इत्यमुं भरतीयं श्लोकमेको भेदः प्रख्यातो नाटिकाख्य इतरस्त्वप्रख्यातः प्रकरणिकासंज्ञो नाटीसंज्ञया हे काव्ये आश्रिते इति व्याचक्षाणाः प्रकरणिकामपि मन्यन्ते । तदसत् । उद्देशलक्षणयोरनभिधानात्ममानलक्षणत्वे वा भेदाभावात् । वस्तुरसनायकानां प्रकरणाभेदात्प्रकरणिकायाः । अतोऽनुद्दिष्टाया नाटिकाया यन्मुनिना लक्षणं कृतं तत्रायमभिप्रायः । शुद्धलक्षणसंकरादेव तल्लक्षणे सिद्धे लक्षणकरणं संकीर्णानां नाटिकैव कर्तव्येति नियमार्थं विज्ञायते ।

तमेव संकरं दर्शयति—

तत्र वस्तु प्रकरणान्नाटकान्नायको नृपः ॥ ४३ ॥

प्रख्यातो धीरललितः शृङ्गारोऽङ्गी सलक्षणः ।

उत्पाद्येतिवृत्तत्वं प्रकरणधर्मः प्रख्यातनृपनायकादित्वं तु नाटकधर्म इति । एवं च नाटकप्रकरणनाटिकातिरेकेण वस्त्वादेः प्रकरणिकायामभावादङ्कपात्रभेदाच्च भेदः ।

तत्र—

स्त्रीप्रायचतुरङ्गादिभेदकं यदि चेप्यते ॥ ४४ ॥

एकद्वित्र्यङ्कपात्रादिभेदेनानन्तरूपता ।

तत्र नाटिकेति स्त्रीसमाख्ययौचित्यप्राप्तं स्त्रीप्रधानत्वम् । कैशिकीवृत्त्याश्रयत्वाच्च तदङ्कसंख्ययाल्पावमर्शत्वेन चतुरङ्कत्वमप्यौचित्यप्राप्तमेव ।

विशेषस्तु—

देवी तत्र भवेज्ज्येष्ठा प्रगल्भा नृपवंशजा ॥ ४५ ॥

गम्भीरा मानिनी कृच्छ्रात्तद्वशात्तत्संगमः ।

प्राप्या तु—

नायिका तादृशी मुग्धा दिव्या चातिमनोहरा ॥ ४६ ॥

तादृशीति नृपवंशजत्वादिधर्मातिदेशः ।

अन्तःपुरादिसंबन्धादासन्ना श्रुतिदर्शनैः ।

अनुरागो नवावस्थो नेतुस्तस्यां यथोत्तरम् ॥ ४७ ॥

नेता तत्र प्रवर्तेत देवीत्रासेन शङ्कितः ।

तस्यां मुग्धनायिकायामन्तःपुरसंबन्धसंगीतकसंबन्धादिना प्रत्यासन्नायां  
नायकस्य देवीप्रतिबन्धान्तरित उत्तरोत्तरो नवावस्थानुरागो निबन्धनीयः ।

कैशिक्यङ्गैश्चतुर्भिश्च युक्ताङ्कैरिव नाटिका ॥ ४८ ॥

प्रत्यङ्कोपनिबद्धाभिहितलक्षणकैशिक्यङ्गचतुष्टयवती नाटिकेति ।

अथ भाणः—

भाणस्तु धूर्तचरितं स्वानुभूतं परेण वा ।

यत्रोपवर्णयेदेको निपुणः पण्डितो विटः ॥ ४९ ॥

संबोधनोक्तिप्रत्युक्ती कुर्यादाकाशभाषितैः ।

सूचयेद्वीरशृङ्गारौ शौर्यसौभाग्यसंस्तवैः ॥ ५० ॥

भूयसा भारती वृत्तिरेकाङ्कं वस्तु कल्पितम् ।

मुखनिर्वहणे साङ्गे लास्याङ्गानि दशापि च ॥ ५१ ॥

धूर्ताश्चौरद्यूतकारादयस्तेषां चरितं यत्रैक एव विटः स्वकृतं परकृतं वोप-  
वर्णयति स भारतीवृत्तिप्रधानत्वाद्भाणः । एकस्य चोक्तिप्रत्युक्तय आकाश-  
भाषितैराशङ्कितोत्तरत्वेन भवन्ति । अस्पष्टत्वाच्च वीरशृङ्गारौ सौभाग्यशौर्यो-  
पवर्णनया सूचनीयौ ।

लास्याङ्गानि—

गेयं पदं स्थितं पाठ्यमासीनं पुष्पगण्डिका ।

प्रच्छेदकस्त्रिगूढं च सैन्धवाख्यं द्विगूढकम् ॥ ५२ ॥

उत्तमोत्तमकं चैव उक्तप्रत्युक्तमेव च ।

लास्ये दशविधं हेतदङ्गनिर्देशकैल्पनम् ॥ ५३ ॥

शेषं स्पष्टमिति ।

अथ प्रहसनम्—

तद्वत्प्रहसनं त्रेधा शुद्धवैकृतसंकरैः ।

तद्वदिति भाणवद्वस्तुसंधिसंध्यङ्गलास्यादीनामतिदेशः ।

तत्र शुद्धं तावत्—

पाखण्डिविप्रभृतिचेटचेटीविटाकुलम् ॥ ५४ ॥

चेष्टितं वेषभाषाभिः शुद्धं हास्यवचोन्वितम् ।

पाखण्डिनः शाक्यनिग्रन्थप्रभृतयः । विप्राश्चात्यन्तमृजवः । जातिमात्रो-  
पजीविनो वा । प्रहसनाङ्गिहास्यविभावास्तेषां च यथावत्स्वव्यापारोपनिब-  
न्धनं चेष्टचेटीव्यवहारयुक्तं शुद्धं प्रहसनम् ।

विकृतं तु—

कामुकादिवचोवेषैः षण्ढकञ्चुकितापसैः ॥ ५५ ॥

विकृतं संकराद्विध्या संकीर्णं धृतसंकुलम् ।

कामुकादयो भुजङ्गचारभयाद्याः । तदेगभापादिगोगिनो यत्र षण्ढकञ्चु-  
कितापमवृद्धादयस्तद्विकृतम् । स्वस्वरूपप्रच्युतविभावत्वात् । वीथ्यङ्गैस्तु  
संकीर्णत्वात्संकीर्णम् ।

रसस्तु भूयसा कार्यः षड्विधो हास्य एव तु ॥ ५६ ॥

इति स्पष्टम् ।

अथ डिमः—

डिमे वस्तु प्रसिद्धं स्याद्वृत्तयः कैशिकीं विना ।

नेतारो देवगन्धर्वयक्षरक्षोमहोरगाः ॥ ५७ ॥

भूतप्रेतपिशाचाद्याः षोडशात्यन्तमुद्धताः ।

रसैरहास्यशृङ्गारैः षड्भिर्दीप्तैः समन्वितः ॥ ५८ ॥

मायेन्द्रजालसंग्रामक्रोधोद्भ्रान्तादिचेष्टितैः ।

चन्द्रमूर्योपरागैश्च न्याय्ये रौद्ररसेऽङ्गिनि ॥ ५९ ॥

चतुरङ्गश्चतुःसंधिर्निर्विमर्शो डिमः स्मृतः ।

डिमसंघात इति नायकसंघातव्यापारात्मकत्वाद्धिमः । तत्रेतिहासप्रसिद्ध-  
मिति वृत्तम् । वृत्तयश्च कैशिकीवर्जास्तिष्ठः । रसाश्च वीररौद्रवीभत्साद्भुतक-  
रुणभयानकाः षट् । स्थायी तु रौद्रो न्यायप्रधानो विमर्शरहिता मुखप्रति-  
मुखगर्भनिर्वहणाख्याश्चत्वारः संधयः साङ्गाः । मायेन्द्रजालाद्यनुभावसमाश्र-  
याः । शेषं प्रस्तावादिनाटकवत् । एतच्च—

‘इदं त्रिपुरदाहे तु लक्षणं ब्रह्मणोऽनिम् ।

ततस्त्रिपुरदाहश्च डिमसंज्ञः प्रयोजितः ॥’

इति भरतमुनिना स्वयमेव त्रिपुरदाहेतिवृत्तस्य तुल्यत्वं दर्शितम् ।

अथ व्यायोगः—

ख्यातेतिवृत्तो व्यायोगः ख्यातोद्धतनराश्रयः ॥ ६० ॥

हीनो गर्भविमर्शाभ्यां दीप्ताः स्युर्दिमवद्रागाः ।

अस्त्रीनिमित्तसंग्रामो जामदग्न्यजये यथा ॥ ६१ ॥

एकाहाचरितैकाङ्को व्यायोगो बहुभिर्नरैः ।

व्यायुज्यन्तेऽस्मिन्बहवः पुरुषा इति व्यायोगः । तत्र डिमवद्रागाः पट्टहास्यशृङ्गाररहिताः । वृत्त्यात्मकत्वाच्च रसानामवचनेऽपि कैशिकीरहितेतरवृत्तित्वं रसवदेव लभ्यते । अस्त्रीनिमित्तश्चात्र संग्रामः । यथा परशुरामेण पितृवधकोपात्सहस्रार्जुनवधः कृतः । शेषं स्पष्टम् ।

अथ समवकारः—

कार्यं समवकारेऽपि आमुखं नाटकादिवत् ॥ ६२ ॥

ख्यातं देवासुरं वस्तु निर्विमर्शास्तु संधयः ।

वृत्तयो मन्दकैशिक्यो नेतारो देवदानवाः ॥ ६३ ॥

द्वादशोदात्तविख्याताः फलं तेषां पृथक्पृथक् ।

बहुवीररसाः सर्वे यद्वदम्भोधिमन्थने ॥ ६४ ॥

अङ्गैस्त्रिभिस्त्रिकपटस्त्रिशृङ्गारस्त्रिविद्रवः ।

द्विसंधिरङ्कः प्रथमः कार्यो द्वादशनालिकः ॥ ६५ ॥

चतुर्द्विनालिकावन्त्यौ नालिका घटिकाद्वयम् ।

वस्तुस्वभावदैवारिकृताः स्युः कपटास्त्रयः ॥ ६६ ॥

नगरोपरोधयुद्धे वाताश्यादिकविद्रवाः ।

धर्मार्थकामैः शृङ्गारो नात्र बिन्दुप्रवेशकौ ॥ ६७ ॥

वीथ्यङ्गानि यथालाभं कुर्यात्प्रहसने यथा ।

समवकीर्यन्तेऽस्मिन्नर्था इति समवकारः । तत्र नाटकादिवद्भागमिति



ममस्तरूपकाणामासुखप्रापणम् । विमर्शवर्जिताश्चत्वारः संधयः । देवानुग-  
दयो द्वादशनायकाः । तेषां च फलानि पृथक्पृथग्भवन्ति । यथा समुद्रम-  
न्थने वामुदेवादीनां लक्ष्म्यादिलाभाः । वीरश्चाङ्गी । अङ्गभूताः सर्वे रसाः ।  
त्रयोऽङ्काः । तेषां प्रथमो द्वादशनालिका निवृत्तेति वृत्तप्रमाणः । यथासंख्यं  
चतुर्द्विनालिकावन्त्यौ नालिका च घटिकाद्वयम् । प्रत्यङ्कं च यथासंख्यं क-  
पटाः । तथा नगरोपरोऽप्युद्धवताऽग्नादिविद्रवाणां मध्य एकैको विद्रवः  
कार्यः । धर्माधिकामशृङ्गागणामेकैकः शृङ्गारः । प्रत्यङ्कमेव विधातव्यः ।  
वीथ्यङ्गानि च यथा लाभं कार्याणि । विन्दुप्रवेशकौ नाटकोक्तावपि न वि-  
धातव्यौ । इत्ययं समवकारः ।

अथ वीथी—

वीथी तु कैशिकीवृत्तौ संध्यङ्गाङ्कैस्तु भाणवत् ॥ ६८ ॥

रसः सूच्यस्तु शृङ्गारः स्पृशेदपि रसान्तरम् ।

युक्ता प्रस्तावनाख्यातैरङ्गैरुद्धात्यकादिभिः ॥ ६९ ॥

एवं वीथी विधातव्या द्व्येकपात्रप्रयोजिता ।

वीथीवद्वीथीमार्गोऽङ्गानां पङ्क्तिर्वा भाणवन्कार्या । विशेषस्तु रसः शृ-  
ङ्गारोऽपरिपूर्णत्वाद्भूयसा सूच्यः । रसान्तराण्यपि स्तोत्रं स्पर्शनीयानि ।  
कैशिकी वृत्ती रसौचित्यादेवेति । शेषं स्पष्टम् ।

अथाङ्कः—

उत्सृष्टिकाङ्के प्रख्यातं वृत्तं बुद्ध्या प्रपञ्चयेत् ॥ ७० ॥

रसस्तु करुणः स्थायी नेतारः प्राकृता नराः ।

भाणवत्संधिवृत्त्यङ्गैर्युक्तः स्त्रीपरिदेवितैः ॥ ७१ ॥

वाचा युद्धं विधातव्यं तथा जयपराजयौ ।

उत्सृष्टिकाङ्क इति नाटकान्तर्गताङ्कव्यवच्छेदार्थम् । शेषं प्रतीतमिति ।

अथेहामृगः—

मिश्रमीहामृगे वृत्तं चतुरङ्कं त्रिसंधिमत् ॥ ७२ ॥

नरदिव्यावनियमान्नायकप्रतिनायकौ ।

ख्यातौ धीरोद्धतावन्त्यो विपर्यासादयुक्तकृत् ॥ ७३ ॥

दिव्यस्त्रियमनिच्छन्तीमपहारादिनेच्छतः ।

शृङ्गाराभासमप्यस्य किञ्चित्किञ्चित्प्रदर्शयेत् ॥ ७४ ॥

संरम्भं परमानीय युद्धं व्याजान्निवारयेत् ।

वधप्राप्तस्य कुर्वीत वधं नैव महात्मनः ॥ ७५ ॥

मृगवदलभ्यां नायिकां नायकोऽस्मिन्नीहते इतीहामृगः । ख्याताख्यातं  
वस्त्वन्त्यः प्रतिनायको विपर्यासाद्विपर्ययज्ञानादयुक्तकारी विधेयः । स्प-  
ष्टमन्यत् ।

इत्थं विचिन्त्य दशरूपकलक्ष्ममार्ग-

मालोक्य वस्तु परिभाव्य कविप्रबन्धान् ।

कुर्यादयन्नवदलंकृतिभिः प्रबन्धं

वाक्यैरुदारमधुरैः स्फुटमन्दवृत्तैः ॥ ७६ ॥

स्पष्टम् ॥

इति श्रीविष्णुसुनोर्धनिकस्य कृतौ दशरूपावलोक्ये

रूपकलक्षणप्रकाशो नाम तृतीयः प्रकाशः समाप्तः ।

अथेदानीं रसभेदः प्रदर्श्यते—

विभावैरनुभावैश्च सात्त्विकैर्व्यभिचारिभिः ।

आनीयमानः स्वाद्यत्वं स्थायी भावो रसः स्मृतः ॥ १ ॥

वक्ष्यमाणस्वभावैर्विभावानुभावव्यभिचारिसात्त्विकैः काव्योपात्तैरभिनयोप-  
दर्शितैर्वा श्रोतृप्रेक्षकाणामन्तर्विपरिवर्तमानो रत्यादिर्वक्ष्यमाणलक्षणः स्थायी  
स्वादगोचरतां निर्भरानन्दसंविदात्मतामानीयमानो रसः । तेन रसिकाः सा-  
माजिकाः । काव्यं तु तथाविधानन्दसंविदुन्मीलनहेतुभावेन रसवदायुर्वृ-  
त्तमित्यादिव्यपदेशवत् ।

तत्र विभावः—

ज्ञायमानतया तत्र विभावो भावपोषकृत् ।

आलम्बनोद्दीपनत्वप्रभेदेन स च द्विधा ॥ २ ॥

एवमयमेवमियमित्यतिशयोक्तिरूपकाव्यव्यापाराहितविशिष्टरूपतया ज्ञा-  
यमानो विभाव्यमानः सत्रालम्बनत्वेनोद्दीपनत्वेन वा यो नायकादिरभिमत-  
देशकालादिर्वा स विभावः । यदुक्तं विभाव इति विज्ञातार्थ इति, तांश्च  
यथास्वं यथावसरं च रसेषूपपादयिष्यामः । अमीषां चानपेक्षितबाह्यसत्त्वानां  
शब्दोपधानादेवासादिततद्भावानां सामान्यात्मनां स्वस्वसंबन्धित्वेन विभावि-  
तानां साक्षाद्भावकचेतसि विपरिवर्तमानानामालम्बनादिभाव इति न वस्तुशू-  
न्यता । तदुक्तं भर्तृहरिणा—‘शब्दोपहितरूपांस्तान्वुद्धेर्विषयतां गतान् ।  
प्रत्यक्षमिव कंसादीन्साधनत्वेन मन्यते ॥’ इति । पट्सहस्रीकृताप्युक्तम्—  
‘एभ्यश्च सामान्यगुणयोगेन रसा निष्पद्यन्ते’ इति ।

तत्रालम्बनविभावो यथा—

‘अस्याः सर्गविधौ प्रजापतिरभूच्चन्द्रो नु कान्तिप्रदः

शृङ्गारैकनिधिः स्वयं नु मदनो मासो नु पुष्पाकरः ।

वेदाभ्यासजडः कथं नु विषयव्यावृत्तकौतूहलो

निर्मातुं प्रभवेन्मनोहरमिदं रूपं पुराणो मुनिः ॥’

उद्दीपनविभावो यथा—

‘अयमुदयति चन्द्रश्चन्द्रिकाभौतविश्रः  
परिणतविमलिम्नि व्योम्नि कर्पूरगौरः ।  
ऋतुरजनदालाकाम्पभिर्भिर्यस्य पादै-  
र्जगदमलमृणालीपत्रगम्गं विभाति ॥’

**अनुभावो विकारस्तु भावसंसूचनात्मकः ।**

स्थायिभावाननुभावयतः मामानिजान्मभूभिर्भेवकटाभादयो रसपोषका-  
रिणोऽनुभावाः । एते चाभिनयकाव्ययोरप्यनुभावयतां साक्षाद्भावानुभव-  
कर्मतयानुभूयन्त इत्यनुभवनमिति चानुभावा रसिकेषु व्यपदिश्यन्ते । वि-  
कारो भावसंसूचनात्मक इति तु लौकिकरसापेक्षया इह तु तेषां कारण-  
त्वमेव । यथा समैव—

‘उज्जृम्भाननमुल्लसत्कुचतटं लोलभ्रमद्भूलतं  
स्वदाम्भःस्रपिताङ्गयष्टिविगलद्भीडं सरोमाञ्चया ।

धन्यः कोऽपि युवा स यस्य वदने व्यापारिताः सस्पृहं  
मुग्धे दुग्धमहाब्धिफेनपटलप्रख्याः कटाक्षच्छटाः ॥’

इत्यादि यथारसमुदाहरिष्यामः ।

**हेतुकार्यात्मनोः सिद्धिस्तयोः संव्यवहारतः ॥ ३ ॥**

तयोर्विभावानुभावयोर्लौकिकरसं प्रतिहेतुकार्यभूतयोः संव्यवहारादेव सि-  
द्धत्वान्न पृथग्लक्षणमुपयुज्यते । तदुक्तम्—‘विभावानुभावौ लोकसंसिद्धौ  
लोकयात्रानुगामिनौ लोकस्वभावोपगतत्वाच्च न पृथग्लक्षणमुच्यते’ इति ।

अथ भावः—

**सुखदुःखादिकैर्भावैर्भावस्तद्भावभावनम् ।**

अनुकार्याश्रयत्वेनोपनिबध्यमानैः सुखदुःखादिरूपैर्भावैस्तद्भावस्य भावक-  
चेतसो भावनं वासनं भावः । तदुक्तम्—‘अहो ह्यनेन रसेन गन्धेन वा सर्वमे-  
तद्भावितं वासितम्’ इति । यत्तु रसान्भावयन्भाव इति, कवेरन्तर्गतं भावं  
भावयन्भाव इति च, तदभिनयकाव्ययोः प्रवर्तमानस्य भावशब्दस्य प्रवृ-  
त्तिनिमित्तकथनम् ।

ते च स्थायिनो व्यभिचारिणश्चेति वक्ष्यमाणाः ।

पृथग्भावा भवन्त्यन्येऽनुभावत्वेऽपि सात्त्विकाः ॥ ४ ॥

सत्त्वादेव समुत्पत्तेस्तच्च तद्भावभावनम् ।

परगतदुःखहर्षादिभावनायामत्यन्तानुकूलान्तःकरणत्वं सत्त्वम् । य-  
दाह—‘सत्त्वं नाम मनःप्रभवम् । तच्च समाहितमनस्त्वादुत्पद्यते । एत-  
देवास्य सत्त्वं यतः खिन्नेन प्रहर्षितेन चाश्रुरोमाश्चादयो निर्वर्त्यन्ते । तेन  
सत्त्वेन निर्वृत्ताः सात्त्विकाश्च एव भावास्तत उत्पद्यमानत्वादश्रुप्रभृतयोऽपि  
भावा भावसंसूचनात्मकविकाररूपत्वाच्चानुभावा इति द्वैरूप्यमेषाम् ।

ते च—

स्तम्भप्रलयरोमाश्चाः स्वेदो वैवर्ण्यवेपथू ॥ ५ ॥

अश्रुवैस्वर्यमित्यष्टौ स्तम्भोऽस्मिन्निष्क्रियाङ्गता ।

प्रलयो नष्टसंज्ञत्वं शेषाः सुव्यक्तलक्षणाः ॥ ६ ॥

यथा—

‘वेपथू सेदवदनी रोमाश्चिअ गत्तिए ववइ ।

विललुल्लु तु वलअ लहु वाहोअल्लीए रणेत्ति ॥

मुहउ सामलि होई खणे विमुच्छइ विअग्घेण ।

मुद्धा मुहअल्ली तुअ पेम्मेण सावि ण धिज्जइ ॥’

अथ व्यभिचारिणः । तत्र सामान्यलक्षणम्—

विशेषादाभिमुख्येन चरन्तो व्यभिचारिणः ।

स्थायिन्युन्मग्ननिर्मग्नाः कल्लोला इव वारिधौ ॥ ७ ॥

यथा वारिधौ सत्येव कल्लोला उद्भवन्ति विलीयन्ते च तद्वदेव रत्यादौ  
स्थायिनि सत्येवाविर्भावतिरोभावाभ्यामाभिमुख्येन चरन्तो वर्तमाना निर्वेदा-  
दयो व्यभिचारिणो भावाः । ते च—

निर्वेदग्लानिशङ्काश्रमधृतिजडताहर्षदैर्न्यौघ्यचिन्ता-

स्त्रासेर्ष्यामर्षगर्वाः स्मृतिमरणमदाः सुप्तनिद्राविबोधाः ।

व्रीडापस्मारमोहाः समतिरलसतावेगतर्कावहित्था

व्याध्युन्मादौ विषादोत्सुकचपलयुतास्त्रिंशदेते त्रयश्च ॥ ८ ॥

१. ‘वेपते स्वेदवदना रोमाश्च गात्रे वपति ।

विलोलस्ततो वलयो लघु बाहुवल्लथां रणति ॥

मुखं श्यामलं भवति क्षणं विमूर्च्छति विदग्धेन ।

मुग्धा मुखवल्ली तव प्रेम्णा सापि न धैर्यं करोति ॥’ इति च्छाया.

तत्र निर्वेदः—

तत्त्वज्ञानापदीर्घ्यादेर्निर्वेदः स्वावमाननम् ।

तत्र चिन्ताश्रुनिःश्वासवैवर्ण्योच्छ्वासदीनताः ॥ ९ ॥

तत्त्वज्ञानानिर्वेदो यथा—

‘प्राप्ताः श्रियः सकलकामदुष्पास्ततः किं

दत्तं पदं शिरसि विद्विषतां ततः किम् ।

संप्रीणिताः प्रणयिनो विभवैस्ततः किं

कल्पं स्थितं तनुभृतां तनुभिस्ततः किम् ॥’

आपदो यथा—

‘राज्ञो विपद्वन्धुवियोगदुःखं देशच्युतिर्दुर्गममार्गखेदः ।

आस्वाद्यतेऽस्याः कटुनिष्फलायाः फलं मयैतच्चिरजीवितायाः ॥’

ईर्ष्यातो यथा—

‘विग्विक्शक्रजितं प्रबोधितवता किं कुम्भकर्णेन वा

स्वर्गग्रामटिकाविलुण्ठनपरैः पीनैः किमेभिर्भुजैः ।

न्यक्कारो ह्ययमेव मे यदरयस्तत्राप्यसौ तापसः

सोऽप्यत्रैव निहन्ति राक्षसमयाञ्जीवत्यहो रावणः ॥’

वीरशृङ्गारयोर्व्यभिचारी निर्वेदो यथा—

‘ये बाहवो न युधि वैरिकटोरकण्ठ-

पीठोच्छलद्गधिरराजिविराजितांसाः ।

नापि प्रियापृथुपयोधरपत्रभङ्ग-

संक्रान्तकुङ्कुमरसाः खलु निष्फलास्ते ॥’

आत्मानुरूपं रिपुं रमणीं बालभमानस्य निर्वेदादियमुक्तिः । एवं रसान्तराणामप्यङ्गभाव उदाहार्यः ।

रसानङ्गः स्वतन्त्रो निर्वेदो यथा—

‘कस्त्वं भोः कथयामि दैवहतकं मां विद्धि शाखोटकं

वैराग्यादिव वक्षि साधु विदितं कस्माद्यतः श्रूयताम् ।

वामेनात्र वटस्तमध्वगजनः सर्वात्मना सेवते

न च्छायापि परोपकारकरणी मार्गस्थितस्यापि मे ॥’

विभावानुभावरसाङ्गानङ्गभेदादनेकशाखो निर्वेदो निदर्शनीयः ।

अथ ग्लानिः—

रत्याद्यायासतृद्भुद्भिर्लानिर्निष्प्राणतेह च ।

वैवर्ण्यकम्पानुत्साहक्षामाङ्गवचनक्रियाः ॥ १० ॥

निधुवनकलाम्यासादिश्रमतृद्भुद्भमनादिभिर्निष्प्राणतारूपा ग्लानिः । अस्यां च वैवर्ण्यकम्पानुत्साहादयोऽनुभावाः ।

यथा माघे—

‘लुलितनयनताराः क्षामवक्त्रेन्दुबिम्बा

रजनय इव निद्राक्लान्तनीलोत्पलाक्ष्यः ।

तिमिरमिव दधानाः स्तंसिनः केशपाशा-

नवनिपतिगृहेभ्यो यान्त्यमूर्वारवध्वः ॥’

शेषं निर्वेदवदूह्यम् ।

अथ शङ्का—

अनर्थप्रतिभा शङ्का परक्रौर्यात्स्वदुर्नयात् ।

कम्पशोषाभिवीक्षादिरत्र वर्णस्वरान्यता ॥ ११ ॥

तत्र परक्रौर्याद्यथा रत्नावल्याम्—

‘ह्रिया सर्वस्यासौ हरति विदितास्मीति वदनं

द्वयोर्दृष्ट्वा लपं कलयति कथामात्मविषयाम् ।

सखीषु स्मेरासु प्रकटयति वैलक्ष्यमधिकं

प्रिया प्रायेणास्ते हृदयनिहितातङ्कविधुरा ॥’

स्वदुर्नयाद्यथा वीरचरिते—

‘दूराद्दवीयो धरणीधराभं यस्ताटकेयं तृणवद्बधूनात् ।

हन्ता सुबाहोरपि ताडकारिः स राजपुत्रो हृदि बाधते माम् ॥’

अनया दिशान्यदनुसर्तव्यम् ।

अथ श्रमः—

श्रमः खेदोऽध्वरत्यादेः खेदोऽस्मिन्पर्दनादयः ।

अध्वतो यथोत्तररामचरिते—

‘अलसलुलितमुग्धान्यध्वसंजातखेदा-

दशिथिलपरिरम्भैर्दत्तसंवाहनानि ।

परिमृदितमृणालीदुर्बलान्यङ्गकानि  
त्वमुरसि मम कृत्वा यत्र निद्रामवाप्ता ॥

रतिश्रमो यथा माघे—

‘प्राप्य मन्मथरसादतिभूमिं दुर्वहस्तनभराः सुरतस्य ।  
शश्रमुः श्रमजलार्द्रललाटश्लिष्टकेशमसितायतकेश्यः ॥’

इत्याद्युत्प्रेक्ष्यम् ।

अथ धृतिः—

संतोषो ज्ञानशक्त्यादेर्धृतिरव्यग्रभोगकृत् ॥ १२ ॥

ज्ञानाद्यथा भर्तृहरिशतके—

‘वयमिह परितुष्टा वल्कलैस्त्वं च लक्ष्म्या  
सम इह परितोषो निर्विशेषो विशेषः ।

स तु भवतु दरिद्रो यस्य तृष्णा विशाला  
मनसि च परितुष्टे कोऽथवान्को दरिद्रः ॥’

शक्तितो यथा रत्नावल्याम्—

‘राज्यं निर्जितशत्रु योग्यसचिवे न्यस्तः समस्तो भरः

सम्यक्पालनपालिताः प्रशमिताशेषोपसर्गाः प्रजाः ।

प्रद्योतस्य सुता वसन्तसमयस्त्वं चेति नाम्ना धृतिं

कामः काममुपैत्वयं मम पुनर्मन्ये महानुत्सवः ॥’

इत्याद्युत्प्रेक्ष्यम् ।

अथ जडता—

अप्रतिपत्तिर्जडता स्यादिष्टानिष्टदर्शनश्रुतिभिः ।

अनिमिषनयननिरीक्षणतूष्णींभावादयस्तत्र ॥ १३ ॥

इष्टदर्शनाद्यथा—

‘एवमालि निगृहीतसाध्वसं शंकरो रहसि सेव्यतामिति ।

सा सखीभिरुपदिष्टमाकुला नास्मरत्प्रमुखवर्तिनि प्रिये ॥’

अनिष्टश्रवणाद्यथोदात्तराघवे—‘राक्षसः—

तावन्तस्ते महात्मानो निहताः केन राक्षसाः ।

येषां नायकतां यातास्त्रिशिरःखरदूषणाः ॥



द्वितीयः—गृहीतधनुषा रामहतकेन । प्रथमः—किमेकाकिनैव ।

द्वितीयः—अदृष्टा कः प्रत्येति । पश्य तावतोऽस्मद्वलस्य ।

सद्यश्छिन्नशिरःश्वभ्रमज्जत्कङ्कुकुलाकुलाः ।

कबन्धाः केवलं जातास्तालोत्ताला रणाङ्गणे ॥

प्रथमः—सखे, यद्येवं तदाहमेवंविधः किं करवाणि ।' इति ।

अथ हर्षः—

प्रसत्तिरुत्सवादिभ्यो हर्षोऽश्रुस्वेदगद्गदाः ।

प्रियागमनपुत्रजननोत्सवादिविभावैश्चेतःप्रसादो हर्षः । तत्र चाश्रुस्वेद-  
गद्गदादयोऽनुभावाः । यथा—

‘आयाते दयिते मरुस्थलभुवामुत्प्रेक्ष्य दुर्लङ्घ्यतां

गेहिण्या परितोषवाप्पकलिलामासज्य दृष्टिं मुखे ।

दत्त्वा पीलुशमीकरीरकवलान्स्वेनाञ्जलेनादरा-

दुन्मृष्टं करभस्य केसरसटाभाराग्रलभं रजः ॥’

निर्वेदवदितरदुजेयम् ।

अथ दैन्यम्—

दौर्गत्याद्यैरनौजस्यं दैन्यं काष्ण्यामृजादिमत् ॥ १४ ॥

दारिद्र्यन्यकारादिविभावैरनौजस्कता चेतसो दैन्यम् । तत्र च कृष्ण-  
तामलिनवसनदर्शनादयोऽनुभावाः । यथा—

‘वृद्धोऽन्धः पतिरेष मञ्चकगतः स्थूणावशेषं गृहं

कालोऽभ्यर्णजलागमः कुशलिनी वत्सस्य वार्तापि नो ।

यन्नात्संचिततैलबिन्दुघटिका भग्नेति पर्याकुला

दृष्ट्वा गर्भभरालसां सुतवधूं श्वश्रूश्चिरं रोदिति ॥’

शेषं पूर्ववत् ।

अथौद्यम्—

दुष्टेऽपराधदौर्मुख्यक्रौर्यैश्चण्डलमुग्रता ।

तत्र स्वेदशिरःकम्पतर्जनाताडनादयः ॥ १५ ॥

यथा वीरचरिते—‘जामदग्नयः—

उत्कृत्योत्कृत्य गर्भानपि शकलयतः क्षत्रसंतानरोषा-

दुद्धामस्यैकविंशत्यवधि विशसतः सर्वतो राजवंश्यान् ।

पित्र्यं तद्रक्तपूर्णहृदसवनमहानन्दमन्दायमान-

क्रोधाग्नेः कुर्वतो मे न खलु न विदितः सर्वभूतैः स्वभावः ॥’

अथ चिन्ता—

ध्यानं चिन्तेहितानाग्नेः शून्यताश्वासतापकृत् ।

यथा—

‘पक्ष्माग्रग्रथिताश्रुबिन्दुनिकरैर्मुक्ताफलस्पर्धिभिः

कुर्वन्त्या हरहासहारि हृदये हारावलीभूषणम् ।

बाले बालमृणालनालवलयालंकारकान्ते करे

विन्यस्याननमायताक्षि सुकृती कोऽयं त्वया स्मर्यते ॥’

यथा वा—

‘अस्तमितविजयसङ्गा मुकुलितनयनोत्पला बहुश्रुसिता ।

ध्यायति किमप्यलक्ष्यं बाला योगाभियुक्तेव ॥’

अथ त्रासः—

गर्जितादर्शनःक्षोभस्त्रासोऽत्रोत्कम्पितादयः ॥ १६ ॥

यथा माघे—

‘त्रस्यन्ती चलशफरीविघटितोरु-

वर्मोरुरतिशयमाप निभ्रमस्य ।

क्षुभ्यन्ति प्रसभमहो विनापि हेतो-

र्लीलाभिः किमु सति कारणे रमण्यः ॥’

अथासूया—

परोत्कर्षाक्षमासूया गर्वदौर्जन्यमन्युजा ।

दोषोक्त्यवज्ञे भुक्तुमन्युक्रोधेङ्गितानि च ॥ १७ ॥

गर्वे यथा वीरचरिते—

‘अर्थित्वे प्रकटीकृतेऽपि न फलप्राप्तिः प्रभोः प्रत्युत

द्रुह्यन्दाशरथिर्विरुद्धचरितो युक्तस्तया कन्यया

उत्कर्षं च परस्य मानयशसोर्विखंसनं चात्मनः  
स्त्रीरत्नं च जगत्पतिर्दशमुखो दृप्तः कथं मृष्यते ॥'  
दौर्जन्याद्यथा—

‘यदि परगुणा न क्षम्यन्ते यतस्व गुणार्जने  
नहि परयशो निन्दाव्याजैरलं परिमार्जितुम् ।  
विरमसि न चेदिच्छाद्वेषप्रसक्तमनोरथो  
दिनकरकरान्पाणिच्छत्रैर्नुदश्चमयेप्यसि ॥’

मन्युजा यथामरुशतके—

‘पुरस्तन्व्या गोत्रस्त्वलनचकितोऽहं नतमुखः  
प्रवृत्तो वैलङ्घ्यात्किमपि लिखितुं दैवहतकः ।  
स्फुटो रेखान्यासः कथमपि स तादृक्परिणतो  
गता येन व्यक्ति पुनरवयवैः सैव तरुणी ॥  
ननश्चाभिज्ञाय स्फुरदरुणगण्डस्थलरुचा  
मनस्त्रिन्या गोपप्रणगरभमाद्गदगिरि ।  
अहो चित्रं चित्रं स्फुटमिति निगद्याश्रुकलुषं  
रुषा ब्रह्मास्त्रं मे शिरसि निहितो वामचरणः ॥’

अथामर्षः—

अधिक्षेपापमानादेरमर्षोऽभिनिविष्टता ।  
तत्र स्वेदशिरःकम्पतर्जनाताडनादयः ॥ १८ ॥

यथा वीरचरिते—

‘प्रायश्चित्तं चरिष्यामि पूज्यानां वो व्यतिक्रमात् ।  
न त्वेवं दूषयिष्यामि शस्त्रग्रहमहाव्रतम् ॥’

यथा वा वेणीसंहारे—

‘युष्मच्छासनलङ्घनाम्भसि मया मग्नेन नाम स्थितं  
प्राप्ता नाम विगर्हणा स्थितिमतां मध्येऽनुजानामपि ।  
क्रोधोल्लासितशोणितारुणगदस्योच्छिन्दतः कौरवा-  
नद्यैकं दिवसं ममासि न गुरुर्नाहं विधेयस्तव ॥’

अथ गर्वः—

गर्वोऽभिजनलावण्यबलैश्वर्यादिभिर्मदः ।  
कर्माण्यार्धर्षणावज्ञा सविलासाङ्गवीक्षणम् ॥ १९ ॥

यथा वीरचरिते—

‘मुनिरयमथ वीरस्तादृशस्तत्प्रियं मे  
विरमन्तु परिकम्पः कातरे क्षत्रियासि ।  
तपसि विततकीर्तेर्दर्पकण्डूलदोष्णः  
परिचरणसमर्थो राघवः क्षत्रियोऽहम् ॥’

यथा वा तत्रैव—

‘ब्राह्मणातिक्रमत्यागो भवतामेव भूतये ।  
जामदग्न्यश्च वो मित्रमन्यथा दुर्मनायते ॥’

अथ स्मृतिः—

सदृशज्ञानचिन्ताद्यैः संस्कारात्स्मृतिरत्र च ।  
ज्ञातत्वेनार्थभासिन्यां भूसमुन्नयनादयः ॥ २० ॥

यथा—

‘मैनाकः किमयं रुणद्धि गगने मन्मार्गमव्याहतं  
शक्तिस्तस्य कुतः स वज्रपतनाद्भीतो महेन्द्रादपि ।  
तार्क्ष्यः सोऽपि समं निजेन विभुना जानाति मां रावण-  
मा ज्ञातं स जटायुरेव जरसा क्लिष्टो वधं वाञ्छति ॥’

यथा वा मालतीमाधवे—‘माधवः—मम हि प्राक्तनोपलम्भसंभावि-  
तात्मजन्मनः संस्कारस्यानवरतप्रबोधात्प्रतायमानस्तद्विसदृशैः प्रत्ययान्तरैर-  
तिरस्कृतप्रवाहः प्रियतमास्मृतिप्रत्ययोत्पत्तिसंतानस्तन्मयमिव करोति वृत्ति-  
सारूप्यतश्चैतन्यम् ।

‘लीनेव प्रतिबिम्बितेव लिखितेवोत्कीर्णरूपेव च  
प्रत्युप्तेव च वज्रसारघटितेवान्तर्निखातेव च ।  
सा नश्चेतसि कीलितेव विशिखैश्चेतोभुवः पञ्चभि-  
श्चिन्तासंततितन्तुजालनिबिडस्यूतेव लग्ना प्रिया ॥’

अथ मरणम्—

मरणं सुप्रसिद्धत्वादनर्थत्वाच्च नोच्यते ।

यथा—

‘संप्राप्तेऽवधिवासरे क्षणमनु त्वद्वर्त्मवातायनं  
वारंवारमुपेत्य निष्क्रियतया निश्चित्य किञ्चिद्गम् ।

संप्रत्येव निवेद्य केलिकुररीं सार्वं सखीभ्यः शिशो-

मार्धव्याः सहकारकेण करुणः पाणिग्रहो निर्मितः ॥'

इत्यादिवच्चृङ्गाराश्रयालम्बनत्वेन मरणे व्यवसायमात्रमुपनिबन्धनीयम् ।

अन्यत्र कामचारः । यथा वीरचरिते—'पश्यन्तु भवन्तस्ताडकाम् ।

'हन्मर्मभेदिपतदुत्कटकङ्कपत्र-

सवेगतक्षणकृतस्फुरदङ्गभङ्गा ।

नासाकुटीरकुहरद्वयतुल्यनिर्य-

दुद्बुद्बुदध्वनदमृत्प्रसरा मृतैव ॥'

अथ मदः—

हर्षोत्कर्षो मदः पानात्स्वलदङ्गवचोगतिः ॥ २१ ॥

निद्रा हासोऽत्र रुदितं ज्येष्ठमध्याधमादिषु ।

यथा माघे—

'हावहारि हसितं वचनानां कौशलं दृशि विकारविशेषाः ।

चकिरे भृशमृजोरपि बध्वाः कामिनेव तरुणेन मदेन ॥'

इत्यादि ।

अथ सुप्तम्—

सुप्तं निद्रोद्भवं तत्र श्वासोच्छ्वासक्रियापरम् ॥ २२ ॥

यथा—

• 'लघुनि तृणकुटीरे क्षेत्रकोणे यवानां

नवकलमपल्लवस्त्ररे सोपधाने ।

परिहरति सुषुप्तं हालिकद्वन्द्वमारा-

त्कुचकलशमहोष्माबद्धरेखस्तुषारः ॥'

अथ निद्रा—

मनःसमीलनं निद्रा चिन्तालस्यक्लमादिभिः ।

तत्र जृम्भाङ्गभङ्गाक्षिमीलनोत्स्वप्नतादयः ॥ २३ ॥

यथा—

'निद्रार्धमीलितदृशो मदमन्थराणि

नाप्यर्थवन्ति न च यानि निरर्थकानि ।

अद्यापि मे मृगदृशो मधुराणि तस्या-  
स्तान्यक्षराणि हृदये किमपि ध्वनन्ति ॥'

यथा च माघे—

‘प्रहरकमपनीय स्वं निदिद्रासतोच्चैः  
प्रतिपदमुपहृतः केनचिज्जागृहीति ।  
मुहुरविशदवर्णा निद्रया शून्यशून्यां  
दददपि गिरमन्तर्बुध्यते नो मनुष्यः ॥’

अथ विबोधः—

विबोधः परिणामादेस्तत्र जृम्भाक्षिमर्दने ।

यथा माघे—

‘चिररतिपरिखेदप्राप्तनिद्रासुखानां  
चरममपि शयित्वा पूर्वमेव प्रबुद्धाः ।  
अपरिचलितगात्राः कुर्वते न प्रियाणा-  
मशिथिलभुजचक्राश्लेषभेदं तरुण्यः ॥’

अथ व्रीडा—

दुराचारादिभिर्व्रीडा धार्ष्ट्याभावस्तमुन्नयेत् ।  
साचीकृताङ्गावरणवैवर्ण्याधोमुखादिभिः ॥ २४ ॥

यथामरुशतके—

‘पटालश्रे पत्यौ नमयति मुखं जातविनया  
हठाश्लेषं वाञ्छत्यपहरति गात्राणि निभृतम् ।  
न शक्नोत्याख्यातुं स्मितमुखसखीदत्तनयना  
ह्रिया ताम्यत्यन्तः प्रथमपरिहासे नववधूः ॥’

अथापस्मारः—

आवेशो ग्रहदुःखाद्यैरपस्मारो यथाविधिः ।  
भूपातकम्पप्रस्वेदलालाफेनोद्गमादयः ॥ २५ ॥

यथा माघे—

‘आच्छिष्टभूमिं रसितारमुच्चैर्लोलद्रुजाकारवृहत्तरङ्गम् ।  
फेनायमानं पतिमापगानामसावपस्मारिणमाशङ्के ॥’

अथ मोहः—

मोहो विचित्तता भीतिदुःखावेशानुचिन्तनैः ।

तत्राज्ञानभ्रमाघातघूर्णनादर्शनादयः ॥ २६ ॥

यथा कुमारसंभवे—

‘तीव्राभिषङ्गप्रभवेन वृत्ति मोहेन संस्तम्भयतेन्द्रियाणाम् ।

अज्ञातभर्तृव्यसना मुहूर्तं कृतोपकारेव रतिर्बभूव ॥’

यथा चोत्तररामचरिते—

‘विनिश्चेतुं शक्यो न सुखमिति वा दुःखमिति वा

प्रमोहो निद्रा वा किमु विषविसर्पः किमु मदः ।

तव स्पर्शे स्पर्शे मम हि परिमूढेन्द्रियगणो

विकारः कोऽप्यन्तर्जडयति च तापं च कुरुते ॥’

अथ मतिः—

भान्तिच्छेदोपदेशाभ्यां शास्त्रादेस्तत्त्वधीर्मतिः ।

यथा किराते—

‘सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम् ।

वृणुते हि विमृश्यकारिणं गुणलुब्धाः स्वयमेव संपदः ॥’

यथा च—

‘न पण्डिताः साहसिका भवन्ति श्रुत्वापि ते संतुलयन्ति तत्त्वम् ।

तत्त्वं समादाय समाचरन्ति स्वार्थं प्रकुर्वन्ति परस्य चार्थम् ॥’

अथालस्यम्—

आलस्यं श्रमगर्भादेजह्यजृम्भासितादिमत् ॥ २७ ॥

यथा ममैव—

‘चलति कथंचित्पृष्ठा यच्छति वचनं कथंचिदालीनाम् ।

आसितुमेव हि मनुते गुरुगर्भभरालसा सुतनुः ॥’

अथावेगः—

आवेगः संभ्रमोऽस्मिन्नभिसरजनिते शस्त्रनागाभियोगो

दातात्पांसूपदिग्धस्त्वरितपदगतिर्वर्षजे पिण्डिताङ्गः ।

उत्पातात्सस्तान्नेष्वहितहितकृते शोकहर्षानुभावा

बह्वेर्धूमाकुलास्यः करिजमनु भयस्तम्भकम्पापसाराः ॥ २८ ॥

अभिसरो राजविद्रवादिः । तद्वेतुरावेगः । यथा ममैव—

‘आगच्छागच्छ सज्जं कुरु वरतुरगं संनिधेहि द्रुतं मे  
खङ्गः कासौ कृपाणीमुपनय धनुषा किं किमङ्गप्रविष्टम्  
संरम्भोन्निद्रितानां क्षितिभृति गहनेऽन्योन्यमेवं प्रतीच्छ-  
न्वादः स्वप्नाभिदृष्टे त्वयि चकितदृशां विद्विषामाविरासीत् ॥’

इत्यादि ।

‘तनुत्राणं तनुत्राणं शस्त्रं शस्त्रं रथो रथः ।  
इति शुश्रुविरे विष्वगुद्भयः सुभटोक्तयः ॥’

यथा वा—

‘प्रारब्धां तरुपुत्रकेषु सहसा संत्यज्य सेकक्रिया-  
मेतास्तापसकन्यकाः किमिदमित्यालोकयन्त्याकुलाः ।

आरोहन्त्युटजद्रुमांश्च बटवो वाचंयमा अप्यमी  
सद्यो मुक्तसमाधयो निजवृषीष्वेवोच्चपादं स्थिताः ॥’

वातावेगो यथा—‘वाताहतं वसनमाकुलमुत्तरीयम्’ इत्यादि ।  
वर्षजो यथा—

‘देवे वर्षत्यशनपवनव्याघृता वह्निहेतो-  
र्गेहाद्देहं फलकनिचितैः सेतुभिः पङ्कभीताः ।  
नीध्रप्रान्तानविरलजलान्पाणिभिस्ताडयित्वा  
शूर्पच्छत्रस्थगितशिरसो योषितः संचरन्ति ॥’

उत्पातजो यथा—

‘पौलस्त्यपीनभुजसंपदुदस्यमान-  
कैलाससंभ्रमविलोलदृशः प्रियायाः ।  
श्रेयांसि वो दिशतु निह्नुनकोपचिह्न-  
मालिङ्गनोत्पुलकमासितमिन्दुमौलेः ॥’

अहितकृतस्त्वनिष्टदर्शनश्रवणाभ्याम् । तद्यथोदात्तराघवे—‘चित्र-  
मायः—(ससंभ्रमम् ।) भगवन् कुलपते रामभद्र, परित्रायतां परित्रायताम् ।  
(इत्याकुलतां नाटयति ।)’ इत्यादि । पुनः ‘चित्रमायः—

मृगरूपं परित्यज्य विधाय विकटं वपुः ।  
नीयते रक्षसानेन लक्ष्मणो युधि संशयम् ॥



रामः—

वत्सस्याभयवारिधेः प्रतिभयं मन्ये कथं राक्षसा-  
 त्रस्तश्चैष मुनिर्विरौति मनसश्चास्त्येव मे संभ्रमः ।  
 माहामीर्जनकात्मजामिति मुहुः स्नेहाद्गुरुर्याचते  
 न स्थातुं न च गन्तुमाकुलमतेर्मूढस्य मे निश्चयः ॥'

इत्यन्तेनानिष्टप्राप्तिकृतसंभ्रमः ।

इष्टप्राप्तिकृतो यथात्रैव—‘(प्रविश्य पटाक्षेपेण संभ्रान्तो वानरः ।) वानरः—  
 महाराज, एदं खु पवणणन्दणागमणेण पहरिस—’ इत्यादि ‘देवस्स हिअआ-  
 णन्दजणणं विअलिदं महुवणम् ।’ इत्यन्तम् ।

यथा वा वीरचरिते—

‘एह्येहि वत्स रघुनन्दन पूर्णचन्द्र  
 चुम्बामि मूर्धनि चिरस्य परिष्वजे त्वाम् ।  
 आरोप्य वा हृदि दिवानिशमुद्रहामि  
 वन्देऽथवा चरणपुष्करकद्वयं ते ॥’

वह्निजो यथामरुशतके—

‘क्षितो हस्तावलग्नः प्रसभमभिहतोऽप्याददानोऽशुकान्तं  
 गृह्णन्केशेष्वपास्तश्चरणनिपतितो नेक्षितः संभ्रमेण ।  
 आलिङ्गन्त्योऽवधूतस्त्रिपुरयुवतिभिः साश्रुनेत्रोत्पलाभिः  
 कामीवार्द्रापराधः स दहतु दुरितं शांभवो वः शराग्निः ॥’

यथा वा रत्नावल्याम्—

‘विरम विरम वहे मुञ्च धूमाकुलत्वं  
 प्रसरयसि किमुच्चैरग्निषां चक्रवालम् ।  
 विरहदुःखभुजाहं यो न दग्धः प्रियायाः  
 प्रलयदहनभासा तस्य किं त्वं करोषि ॥’

करिजो यथा रघुवंशे—

‘स छिन्नबन्धद्रुतयुग्यशून्यं भग्नाक्षपर्यस्तरथं क्षणेन ।  
 रामापरित्राणविहस्तयोधं सेनानिवेशं तुमुलं चकार ॥’

१. ‘महाराज, एतत्खलु पवननन्दनागमनेन प्रहर्ष—’ इति च्छाया. २. ‘देवस्य  
 हृदयानन्दजननं विदलितं मधुवनम्’ इति च्छाया.

करिग्रहणं व्यालोपलक्षणार्थम् । तेन व्याघ्रशूकरवानरादिप्रभवा आवेगा  
व्याख्याताः ।

अथ वितर्कः—

तर्को विचारः संदेहाद्भूशिरोऽङ्गुलिनर्तकः ।

यथा—

‘किं लोभेन विलङ्घितः स भरतो येनैतदेवं कृतं  
सद्यः स्त्रीलघुतां गता किमथवा मातैव मे मध्यमा ।  
मिथ्यैतन्मम चिन्तितं द्वितयमप्यार्यानुजोऽसौ गुरु-  
माता तातकलत्रमित्यनुचितं मन्ये विधात्रा कृतम् ॥’

अथवा ।

‘कः समुचिताभिषेकादार्यं प्रच्यावयेद्गुणज्येष्ठम् ।  
मन्ये ममैष पुण्यैः सेवावसरः कृतो विधिना ॥’

अथावहित्यम्—

लज्जाद्यैर्विक्रियागुप्ताववहित्थाङ्गविक्रिया ।

यथा कुमारसंभवे—

‘एवंवादिनि देवर्षौ पार्श्वे पितुरधोमुखी ।  
लीलाकमलपत्राणि गणयामास पार्वती ॥’

अथ व्याधिः—

व्याधयः सन्निपाताद्यास्तेषामन्यत्र विस्तरः ॥ २९ ॥

दिङ्मात्रं तु यथा—

‘अच्छिन्नं नयनान्बु बन्धुषु कृतं चिन्ता गुरुभ्योऽर्पिता  
दत्तं दैन्यमशेषतः परिजने तापः सखीष्वाहितः ।  
अद्य श्वः परिनिर्वृतिं व्रजति सा श्वासैः परं खिद्यते  
विश्रब्धो भव विप्रयोगजनितं दुःखं विभक्तं तया ॥’

अथोन्मादः—

अप्रेक्षाकारितोन्मादः सन्निपातग्रहादिभिः ।

अस्मिन्नवस्था रुदितगीतहासासितादयः ॥ ३० ॥

यथा—‘आः क्षुद्रराक्षस, तिष्ठ तिष्ठ । क मे प्रियतमामादाय गच्छसि’  
इत्युपक्रमे ‘कथम् ।

नवजलधरः सन्नद्धोऽयं न दृप्तनिशाचरः  
 सुरधनुरिदं दूराकृष्टं न तस्य शरासनम् ।  
 अयमपि पटुर्धारासारो न बाणपरम्परा  
 कनकनिकषस्त्रिधा विद्युन्निप्रया न ममोर्वशी ॥'

इत्यादि ।

अथ विषादः—

प्रारब्धकार्यासिद्ध्यादेर्विषादः सत्त्वसंशयः ।  
 निःश्वासोच्छ्वासहृत्तापसहायान्वेषणादिकृत् ॥ ३१ ॥

यथा वीरचरिते—‘हा आर्ये ताडके, किं हि नामैतत् । अम्बुनि म-  
 ज्जन्यलावूनि, ग्रावाणः प्लवन्ते ।

नन्वेष राक्षसपतेः स्वलितः प्रतापः  
 प्राप्तोऽद्भुतः परिभवो हि मनुष्यपोतात् ।  
 दृष्टः स्थितेन च मया स्वजनप्रमाथो  
 दैन्यं जरा च निरुणद्धि कथं करोमि ॥'

अथौत्सुक्यम्—

कालाक्षमत्तमौत्सुक्यं रम्येच्छारतिसंभ्रमैः ।  
 तत्रोच्छ्वासत्सर्गनिःश्वासहृत्तापस्वेदविभ्रमाः ॥ ३२ ॥

यथा कुमारसंभवे—

‘आत्मानमालोक्य च शोभमानमादर्शबिम्बे म्निमितागनाक्षी ।  
 हरोपयाने त्वरिता बभूव स्त्रीणां प्रियालोकफलो हि वेषः ॥’

यथा वा तत्रैव—

‘पशुपतिरपि तान्यहानि कृच्छ्रादनिनयदद्रिसुतासमागमोत्कः ।  
 कमपरमवशं न विप्रकुर्युर्विभुमपि तं यदमी सृष्टशन्ति भावाः ॥’

अथ चापला—

मात्सर्यद्वेषरागादेश्चापलं लनवस्थितिः ।  
 तत्र भर्त्सनपारुष्यस्वच्छन्दाचरणादयः ॥ ३३ ॥

यथा विकटनितम्बायाः—

‘अन्यासु तावदुपमर्दसहासु भृङ्ग  
लोलं विनोदय मनः सुमनोलतासु ।  
बालामजातरजसं कलिकामकाले  
व्यर्थं कदर्थयसि किं नवमल्लिकायाः ॥’

यथा वा—

‘विनिकषणरणत्कठोरदंष्ट्राक्रकचविशङ्कटकन्दरोदराणि ।  
अहमहमिकया पतन्तु कोपात्मममधुनैव किमत्र मन्मुखानि ॥’

अथवा प्रस्तुतमेव तावत्सुविहितं करिष्ये ।’ इति ।

अन्ये च चित्तवृत्तिविशेषा एतेषामेव विभावानुभावस्वरूपानुप्रवेशान्न  
पृथग्वाच्याः ।

अथ स्थायी—

विरुद्धैरविरुद्धैर्वा भावैर्विच्छिद्यते न यः ।

आत्मभावं नयत्यन्यान्स स्थायी लवणाकरः ॥ ३४ ॥

सजातीयविजातीयभावान्तरैरतिरस्कृतत्वेनोपनिबध्यमानो रत्यादिः स्था-  
यी । यथा बृहत्कथायां नरवाहनदत्तस्य मदनमञ्जुषायामनुरागः । तत्तदवान्त-  
रानेकनायिकानुरागैरतिरस्कृतः स्थायी । यथा च मान्दवीमाधो श्मशानाङ्के  
बीभत्सेन मालत्यनुरागस्यातिरस्कारो मम हि प्राक्तनोपलम्भसंभावितात्मजन्म-  
नः संस्कारस्यानवरतप्रबोधात्प्रतीयमानस्तद्विसदृशैः प्रत्ययान्तरैरतिरस्कृतप्र-  
वाहः प्रियतमास्मृतिप्रत्ययोत्पत्तिसंतानस्तन्मयमिव करोत्यन्तर्वृत्तिसारूप्यत-  
श्चेतन्यमित्यादिनोपनिबद्धः । तदनेन प्रकारेण विरोधिनामविरोधिनां च स-  
मावेशो न विरोधी । तथाहि । विरोधः सहानवस्थानं बाध्यबाधकभावो वा ।  
उभयरूपेणापि न तावत्तादात्म्यमस्यैकरूपत्वेनैवाविर्भावात् । स्थायिनां च  
विभावादीनां यदि विरोधस्तत्रापि न तावत्सहानवस्थानं रत्याद्युपरक्ते चेत्तसि  
स्वसूत्रन्यायेनाविरोधिनां व्यभिचारिणां चोपनिबन्धः समस्तभावकस्वसंवे-  
दनसिद्धः । यथैव स्वसंवेदनसिद्धस्तथैव काव्यव्यापारसंरम्भेणानुकार्येऽप्या-  
वेश्यमानः स्वचेतःसंभेदेन तथाविधानन्दसंविदुन्मीलनहेतुः संपद्यते । तस्मा-  
न्न तावद्भावानां सहानवस्थानम् । तावत्तादात्म्यमनुभावान्तरैर्भावान्तरति-  
रस्कारः । स च व्यभिचारिणां स्थायिनामविरुद्धव्यभिचारिभिः स्थायिनोऽवि-

रुद्धास्तेषामङ्गत्वात्प्रधानविरुद्धस्य चाङ्गत्वायोगादानन्नर्थविरोधित्वमप्यनेन प्रकारेणापास्तं भवति । तथा च मालतीमाधवे शृङ्गारानन्तरं बीभत्सोपनिबन्धेऽपि न किञ्चिद्वैरस्यं तदेवमेव स्थिते विरुद्धरसैकावलम्बनत्वमेव विरोधे हेतुः । सत्त्वविरुद्धरसान्तरव्यवधानेनोपनिबध्यमानो न विरोधी । यथा—

‘अण्णहुणाहुमहेलिअहुजुहुपरिमलुसुअन्धु ।

मुहुकन्तह अगत्थणहअङ्ग ण फिट्ठइ गन्धु ॥’

इत्यत्र बीभत्सरसस्याङ्गभूतरसान्तरव्यवधानेन शृङ्गारसमावेशो न विरुद्धः प्रकारान्तरेणैकाश्रयविरोधी परिहर्तव्यः । ननु यत्रैकतात्पर्येणेतरेषां विरुद्धानामविरुद्धानां च न्यग्भूतत्वेनोपादानं तत्र भवत्वङ्गत्वेनाविरोधः । यत्र तु समप्रधानत्वेनानेकस्य भावस्योपनिबन्धनं तत्र कथम् । यथा—

‘ऐकत्तो रुअइ पिआ अण्णत्तो समरतूरणिग्घोसो ।

पेम्मेण रणरसेण अ भट्स डोलाइअं हिअअम् ॥’

इत्यादौ रत्युत्साहयोः । यथा वा—

‘मात्सर्यमुत्सार्य विचार्य कार्यमार्याः समर्यादमिदं वदन्तु ।

सेव्या नितम्बाः किमु भूधराणामुत स्मरस्मेरविलासिनीनाम् ॥’

इत्यादौ रतिशमयोः । यथा च—

‘इयं सा लोलाक्षी त्रिभुवनललमैकवसतिः

स चायं दुष्टात्मा स्वसुरपकृतं येन मम तत् ।

इतस्तीव्रः कामो गुरुरयमितः क्रोधदहनः

कृतो वेषश्चायं कथमिदमिति भ्राम्यति मनः ॥’

इत्यादौ तु रतिक्रोधयोः ।

‘अन्त्रैः कल्पितमङ्गलप्रतिसराः स्त्रीहस्तरक्तोत्पल-

व्यक्तोत्तंसभृतः पिन्दशिरसा हृत्पुण्डरीकस्रजः ।

एताः शोणितपङ्ककुङ्कुमजुषः संभूय कान्तैः पिब-

न्त्यस्थिस्नेहसुरां कपालचषकैः प्रीताः पिशाचाङ्गनाः ॥’

इत्यादावेकाश्रयत्वेन रतिजुगुप्सयोः ।

‘एकं ध्याननिमीलनान्मुकुलितं चक्षुर्द्वितीयं पुनः

पार्वत्या वदनाम्बुजस्तनते शृङ्गारभारालसम् ।

१. नितान्तास्फुटत्वादस्य श्लोकस्य व्याख्या न लिख्यतेऽस्माभिः.

२. ‘एकतो रोदिति प्रियान्यतः समरतूर्यनिर्घोषः ।

प्रेम्णा रणरसेन च भटस्य दोलायितं हृदयम् ॥’ इति च्छाया.

अन्यदूरविकृष्टचापमदनक्रोधानलोद्दीपितं  
शंभोर्भिन्नरसं समाधिसमये नेत्रत्रयं पातु वः ॥'

इत्यादौ शमरतिक्रोधानाम् ।

‘एकेनाक्षणा प्रविततरुषा वीक्षते व्योमसंस्थं  
भानोर्बिम्बं सजललुलितेनापरेणात्मकान्तम् ।

अहश्छेदे दयितविरहाशङ्किनी चक्रवाकी  
द्वौ संकीर्णौ रचयति रसौ नर्तकीव प्रगल्भा ॥’

इत्यादौ रतिशोकक्रोधानां समप्राधान्येनोपनिबन्धस्तत्कथं न विरोधः ।  
अत्रोच्यते—अत्राप्येक एव स्थायी । तथाहि । ‘एकतो रुइ पिआ’  
इत्यादौ स्थायिभूतोत्साहव्यभिचारिलक्षणवितर्कभावहेतुसंदेहरागणतया क-  
रुणसङ्ग्रामतूर्ययोरुपादानं वीरमेव पुष्पातीति भट्टस्येत्यनेन पदेन प्रतिपादि-  
तम् । न च द्वयोः समप्रधानयोरन्योन्यमुपकार्योपकारकभावरहितयोरेक-  
वाक्यभावो युज्यते । किंचोपक्रान्ते सङ्क्रान्ते सुभटानां कार्यान्तरकरणेन प्र-  
स्तुतसङ्क्रामौदासीन्येन महदनौचित्यम् । अतो भर्तुः सङ्क्रामैकरसिकतया  
शौर्यमेव प्रकाशयन्प्रयतत्कारुणो वीरमेव पुष्पाति । एवम् ‘मात्सर्यम्—’  
इत्यादावपि चिरप्रवृत्तरतिवासनाया हेयतयोपादानाच्छमैकपरत्वम् ‘आर्याः  
समर्यादम्’ इत्यनेन प्रकाशितम् । एवम् ‘इयं सा लोलाक्षी’ इत्यादावपि रा-  
वणस्य प्रतिपक्षनायकतया निशाचरत्वेन मायाप्रधानतया च रौद्रव्यभिचा-  
रिविषादविभाववितर्कहेतुतया रतिक्रोधयोरुपादानं रौद्रपरमेव । ‘अन्त्रैः क-  
ल्पितमङ्गलप्रतिसराः’ इत्यादौ हास्यरसैकपरत्वमेव । ‘एकं ध्याननिमील-  
नात्’ इत्यादौ शंभोर्भावान्तैरैरनाक्षिततया शमस्थस्यापि योग्यन्तरशमाद्वैल-  
क्षण्यप्रतिपादनेन शमैकपरतैव ‘समाधिसमये’ इत्यनेन स्फुटीकृता । ‘एकेना-  
क्षणा’ इत्यादौ तु समस्तमपि वाक्यं भविष्यद्विप्रलम्भविषयमिति न कचि-  
दनेकतात्पर्यम् । यत्र तु श्लेषादिवाक्येष्वनेकतात्पर्यमपि तत्र वाक्यार्थभेदेन  
स्वतन्त्रतया चार्थद्वयपरतेत्यदोषः । यथा—

‘श्लाघ्याशेषतनुं सुदर्शनकरः सर्वाङ्गलीलाजित-  
त्रैलोक्यां चरणारविन्दललितेनाक्रान्तलोको हरिः ।

बिभ्राणां मुखमिन्दुसुन्दररुचं चन्द्रात्मचक्षुर्दध-  
त्स्थाने यां स्वतनोरपश्यदधिकां सा रुक्मिणी वोऽवतात् ॥’

इत्यादौ । तदेवमुक्तप्रकारेण रत्याद्युपनिबन्धे सर्वत्राविरोधः । यथा वा श्रूयमाणरत्यादिपदेष्वपि वाक्येषु तत्रैव तात्पर्यं तथाग्रे दर्शयिष्यामः ।

ते च—

**रत्युत्साहजुगुप्साः क्रोधो हासः स्मयो भयं शोकः ।**

**शममपि केचित्प्राहुः पुष्टिर्नाट्येषु नैतस्य ॥ ३५ ॥**

इह शान्तरसं प्रति वादिनामनेकविधा विप्रतिपत्तयः । तत्र केचिदाहुः—  
नास्त्येव शान्तो रसः । तस्याचार्येण विभागाप्रतिपादनालुभणाकर्णणात् ।  
अन्ये तु वस्तुतस्तस्याभावं वर्णयन्ति । अनादिकालप्रवाहागानरागद्वेषयो-  
रुच्छेत्तुमशक्यत्वात् । अन्ये तु वीरबीभत्सादावन्तर्भावं वर्णयन्ति । एवं  
वदन्तः शममपि नेच्छन्ति । यथा तथास्तु । सर्वथा नाटकादावभिनयात्मनि  
स्थायित्वमस्माभिः शमस्य निषिध्यते । तस्य समस्तव्यापारप्रविलयरूपस्या-  
भिनयायोगात् । यत्तु कैश्चिन्नागानन्दादौ शमस्य स्थायित्वमुपवर्णितम्, तत्तु  
मलयवत्यनुरागेणाप्रबन्धप्रवृत्तेन विद्याधरचक्रवर्तित्वप्राप्त्याविरुद्धम् । न ह्ये-  
कानुकार्यविभावालम्बनौ विषयानुरागापरागावुपलब्धौ । अतो दयावीरोत्साह-  
स्यैव तत्र स्थायित्वम् । तत्रैव शृङ्गारस्याङ्गत्वेन चक्रवर्तित्वावाप्तेश्च फल-  
त्वेनाविरोधादीप्सितमेव च सर्वत्र कर्तव्यमिति परोपकारप्रवृत्तस्य विजिगी-  
षोर्नान्तरीयकत्वेन फलं संपद्यत इत्यावेदितमेव प्राक् । अतोऽष्टावैव स्था-  
यिनः । ननु च 'रसनाद्रसत्वमेतेषां मधुरादीनामिवोक्तमाचार्यैः । निर्वेदा-  
दिष्वपि तत्प्रकाममस्तीति तेऽपि रसाः ॥' इत्यादिना रसान्तराणामप्यन्यैरभ्यु-  
पगतत्वात्स्थायिनोऽप्यन्ये कल्पिता इत्यवधारणानुपपत्तिः ।

अत्रोच्यते—

**निर्वेदादिरताद्व्यप्यादस्थायी स्वदते कथम् ।**

**वैरस्यायैव तत्पोषस्तेनाष्टौ स्थायिनो मताः ॥ ३६ ॥**

विरुद्धाविरुद्धाविच्छेदित्वस्य निर्वेदादीनामभावादस्थायित्वम् । अत एव  
ते चिन्तादिस्वस्वव्यभिचार्यन्तरिता अपि परितोषं नीयमाना वैरस्यमावह-  
न्ति । न च निष्फलावसानत्वमेतेषामस्थायित्वनिबन्धनं हास्यादीनामप्य-  
स्थायित्वप्रसङ्गात् । पारम्पर्येण तु निर्वेदादीनामपि फलवत्त्वात् । अतो  
निष्फलत्वमस्थायित्वे प्रयोजकं न भवति । किंतु विरुद्धैरविरुद्धैर्भावैरतिर-  
स्कृतत्वम् । न च निर्वेदादीनामिति न ते स्थायिनः । ततो रसत्वमपि न तेषा-  
मुच्यते । अतोऽस्थायित्वादेवैतेषामरसता । क. पुनरेतेषां काव्येनापि संबन्धः ।

न तावद्वाच्यवाचकभावः स्वशब्दैरनावेदितत्वात् । न हि शृङ्गारादिरसेषु का-  
व्येषु शृङ्गारादिशब्दा गत्यादिशब्दा वा श्रूयन्ते । येन तेषां तत्परिपोषस्य वा-  
भिधेयत्वं स्यात् । यत्रापि च श्रूयन्ते तत्रापि विभावादिद्वारकमेव रसत्वमेतेषां  
न स्वशब्दाभिधेयत्वमात्रेण । नापि लक्ष्यलक्षकभावस्तत्सामान्याभिधायिनस्तु  
लक्षकस्य पदस्याप्रयोगात् । नापि लक्षितलक्षणया तत्प्रतिपत्तिः । यथा  
'गङ्गायां घोषः' इत्यादौ । तत्र हि स्वार्थे श्रोतोऽक्षणे घोषस्यावस्थानासं-  
भवात्स्वार्थे स्वलङ्घतिर्गङ्गाशब्दः स्वार्थं विना भूतार्थोपलक्षितं तटमुपलक्षयति ।  
अत्र तु नायकादिशब्दाः स्वार्थेऽस्वलङ्घतयः न गमिताः न गम्यन्तामेव ।  
को वा निमित्तप्रयोजनाभ्यां विना मुख्ये सत्युपचरितं प्रयुञ्जीत । 'सिंहो  
माणवकः' इत्यादिवत् । अतएव गुणवृत्त्यापि नेयं प्रतीतिः । यदि वा-  
च्यत्वेन रसप्रतिपत्तिः स्यात्तदा केवलवाच्यवाचकभावमात्रव्युत्पन्नचेतसामप्य-  
रसिकानां रसास्वादो भवेत् । न च काल्पनिकत्वमविगानेन सर्वसहृदयानां  
रसास्वादोद्भूतेः । अतः केचिदभिधालक्षणागौणीभ्यो वाच्यान्तरपरिकल्पि-  
तशक्तिभ्यो व्यतिरिक्तं व्यञ्जकत्वलक्षणं शब्दव्यापारं रसालंकारवस्तुविषय-  
मिच्छन्ति । तथाहि । विभावानुभावव्यभिचारिमुखेन रसादिप्रतिपत्तिरुपजाय-  
माना कथमिव वाच्या स्यात् । यथा कुमारसंभवे—

‘विवृण्वती शैलमुतापि भावमङ्गैः स्फुरद्दालकदम्बकल्पैः ।

साचीकृता चारुतरेण तस्थौ मुखेन पर्यस्तविलोचनेन ॥’

इत्यादावनुरागजन्यावस्थाविशेषानुभाववद्भिरिजालक्षणविभावोपवर्णनादेवाश-  
ब्दापि शृङ्गारप्रतीतिरुदेति । रसान्तरेष्वप्ययमेव न्यायः । न केवलं रसे-  
ष्वेव यावद्भूतमात्रेऽपि । यथा—

‘भ्रम धम्मिअ वीसद्धो सो सुणहो अज्ज मारिओ तेण ।

गोलाणइकच्छकुडङ्गवासिणा दरिअसीहेण ॥’

इत्यादौ निषेधप्रतिपत्तिरशब्दापि व्यञ्जकशक्तिमूलैव । तथालंकारेष्वपि—

‘लावण्यकान्तिपरिपूरितदिबुखेऽस्मि-

न्स्मेरेऽधुना तव मुखे न ग्लायतामि ।

क्षोभं यदेति न मनागपि तेन मन्ये

सुन्यक्तमेव जलराशिरयं पयोधिः ॥’

१. ‘भ्रम धार्मिक विश्रब्धः स श्वाद्य मारितस्तेन ।

गोदावरीनदीकच्छकुटङ्गवासिना दरीसिंहेन ॥’ इति च्छाया.



इत्यादिषु चन्द्रतुल्यं तन्वीवदनारविन्दमित्याद्युपमादलंकारप्रतिपत्तिर्व्यञ्जक-  
त्वनिबन्धनीति । न चामावर्धापत्तिर्न्या । अनुपपद्यमानार्थपेक्षाभावात् ।  
नापि वाक्यार्थत्वं व्यङ्ग्यस्य तृतीयकक्षाविषयत्वात् । तथाहि—‘अत्र धार्मिक’  
इत्यादौ पदार्थविषयाभिधालक्षणप्रथमकक्षातिक्रान्तक्रियाकारकसंसर्गात्मक-  
विधिविषयवाक्यार्थकक्षातिक्रान्ततृतीयकक्षाक्रान्तो निषेधात्मा व्यङ्ग्यल-  
क्षणोऽर्थो व्यञ्जकशक्त्यधीनः स्फुटमेवावभासते । अतो नासौ वाक्यार्थः ।  
ननु च तृतीयकक्षाविषयत्वमश्रूयमाणपदार्थतात्पर्येषु ‘विषं भुङ्क्ष्व’ इत्यादि-  
वाक्येषु निषेधार्थविषयेषु प्रतीयत एव वाक्यार्थः । न चात्र व्यञ्जकत्ववादिनापि  
वाक्यार्थत्वं नेप्यते तात्पर्यादन्यत्वाद्भूने । तत्र स्वार्थस्य द्वितीयकक्षायामवि-  
श्रान्तस्य तृतीयकक्षाभावात् । सैव निषेधकक्षा तत्र द्वितीयकक्षाविधौ क्रि-  
याकारकसंसर्गानुपपत्तेः । प्रकरणात्पितरि वक्तरि पुत्रस्य विषभक्षणनियो-  
गाभावात् । रसवद्वाक्येषु च विभावप्रतिपत्तिलक्षणद्वितीयकक्षायां रसानव-  
गमात् । तदुक्तम्—

‘अप्रतिष्ठमविश्रान्तं स्वार्थं यत्परतामिदम् ।

वाक्यं विगाहते तत्र न्याय्या तत्परतास्य सा ॥

यत्र तु स्वार्थविश्रान्तं प्रतिष्ठां तावदागतम् ।

तत्प्रसर्पति तत्र स्यात्सर्वत्र ध्वनिना स्थितिः ॥’

इत्येवं सर्वत्र रसानां व्यङ्ग्यत्वमेव । वस्त्वलंकारयोस्तु कचिद्वाच्यत्वं  
कचिद्व्यङ्ग्यत्वम् । तत्रापि यत्र व्यङ्ग्यस्य प्राधान्येन प्रतिपत्तिस्तत्रैव  
ध्वनिः, अन्यत्र गुणीभूतव्यङ्ग्यत्वम् । तदुक्तम्—

‘यत्रार्थः शब्दो वा यमर्थमुपसर्जनीकृतस्वार्थो ।

व्यक्तः काव्यविशेषः स ध्वनिरिति सूरिभिः कथितः ॥

प्रधानेऽन्यत्र वाक्यार्थे यत्राङ्गं तु रसादयः ।

काव्ये तस्मिन्नलंकारो रसादिरिति मे मतिः ॥’

यथा—‘उपोदरगेण’ इत्यादि । तस्य च ध्वनेर्विवक्षितवाच्याविवक्षि-  
तवाच्यत्वेन द्वैविध्यम् । अविवक्षितवाच्योऽप्यत्यन्ततिरस्कृतस्वार्थोऽर्थान्तरसं-  
क्रमितवाच्यश्चेति द्विधा । विवक्षितवाच्यश्च अमलसिद्धः क्रमद्योत्यश्चेति  
द्विविधः । तत्र रसादीनामसंलक्ष्यक्रमे ध्वनित्वं प्राधान्यप्रतीतौ सत्यामङ्गत्वे-  
न प्रतीतौ रसवदलंकार इति ।

अत्रोच्यते—

वाच्या प्रकरणादिभ्यो बुद्धिस्था वा यथा क्रिया ।

वाक्यार्थः कारकैर्युक्ता स्थायी भावस्तथेतरेः ॥ ३७ ॥

यथा लौकिकवाक्येषु श्रूयमाणक्रियेषु 'गामभ्याज—' इत्यादिष्वश्रूयमाण-  
क्रियेषु च 'द्वारं द्वारम्' इत्यादिषु स्वशब्दोपादानात्प्रकरणादिवशाद्बुद्धिसं-  
निवेशिनी क्रियैव कारकोपचिता वाक्यार्थस्तथा काव्येष्वपि स्वशब्दोपा-  
दानात्कचित् 'प्रीत्यै नवोढा प्रिया' इत्येवमादौ, कचिच्च प्रकरणादिवशान्नि-  
यताविहितविभावाद्यविनाभावाद्वा साक्षाद्भावकचेतसि विपरिवर्तमानो रत्यादिः  
स्थायी स्वस्वविभावानुभावव्यभिचारिभिस्तत्तच्छब्दोपनीतैः संस्कारपरम्परया  
परं प्रौढिमानीयमानो रत्यादिवाक्यार्थः । न चापदार्थस्य वाक्यार्थत्वं नास्तीति  
वाच्यम् । कार्यपर्यवसायित्वात्तात्पर्यशक्तेः । तथाहि पौरुषेयमपौरुषेयं वाक्यं  
सर्वं कार्यपरम् । अतत्परत्वेऽनुपादेयत्वादुन्मत्तादिवाक्यवत्काव्यशब्दानां चा-  
न्वयव्यतिरेकाभ्यां निरतिशयसुखास्वादव्यतिरेकेण प्रतिपाद्यप्रतिपादकयोः प्र-  
वृत्तिविषययोः प्रयोजनान्तरानुपलब्धेः स्वानन्दोद्भूतिरेव कार्यत्वेनावधार्यते ।  
तदुद्भूतिनिमित्तत्वं च विभावादिसंसृष्टस्य स्थायिन एवावगम्यते । अतो वाक्य-  
स्याभिधानशक्तिस्तेन तेन रसेनाकृष्यमाणा तत्तत्स्वार्थापेक्षितावान्तरविभावा-  
दिप्रतिपादनद्वारा स्वपर्यवसायितामानीयते । तत्र विभावादयः पदार्थस्थानीया-  
स्तत्संसृष्टो रत्यादिर्वाक्यार्थः । तदेतत्काव्यवाक्यम् । यदीयं ताविमौ पदा-  
र्थवाक्यार्थौ । न चैवं सति गीतादिवत्सुखजनकत्वेऽपि वाच्यवाचकभावानु-  
पयोगः । विशिष्टविभावादिसामग्रीविदुषामेव तथाविधरत्यादिभावनावतामेव  
स्वादोद्भूतेस्तदनेनातिप्रसङ्गोऽपि निरस्तः । ईदृशि च वाक्यार्थनिरूपणे परि-  
कल्पिताभिधादिशक्तिवशेनैव समस्तवाक्यार्थावगतेः शक्त्यन्तरपरिकल्पनं  
प्रयासः । यथावोचाम काव्यनिर्णये—

‘तात्पर्यान्तिरेकाच्च व्यञ्जकत्वस्य न ध्वनिः ।

किमुक्तं स्यादश्रुतार्थतात्पर्येऽन्योक्तिरूपिणि ॥

विषं भक्षय पूर्वं यश्चैवं परसुतादिषु ।

प्रसह्यते प्रधानत्वाद्भूतित्वं केन वार्यते ॥

ध्वनिश्चेत्स्वार्थविश्रान्तं वाक्यमर्थान्तराश्रयम् ।

तत्परत्वं त्वविश्रान्तौ तन्न विश्रान्त्यसंभवात् ॥

एतावत्येव विश्रान्तिस्तात्पर्यस्येति किं कृतम् ।  
यावत्कार्यप्रसारित्वात्तात्पर्यं न तुलाधृतम् ॥  
भ्रम धार्मिक विश्रब्धमिति भ्रमिकृतास्पदे ।  
निर्व्यावृत्ति कथं वाक्यं निषेधमुपसर्पति ॥  
प्रतिपाद्यस्य विश्रान्तिरपेक्षापूरणाद्यदि ।  
वक्तुर्विवक्षितप्राप्तेरविश्रान्तिर्न वा कथम् ॥  
पौरुषेयस्य वाक्यस्य विवक्षा परतन्त्रता ।  
वक्त्रभिप्रेततात्पर्यमतः काव्यस्य युज्यते ॥'

इति । अतो न रसादीनां काव्येन सह व्यङ्ग्यव्यञ्जकभावः । किं तर्हि भाव्यभा-  
वकसंबन्धः काव्यं हि भावकम् । भाव्या रसादयः । ते हि स्वतो भवन्त  
एव भावकेषु विशिष्टविभावादिमता काव्येन भाव्यन्ते न चान्यत्र शब्दा-  
न्तरेषु भाव्यभावकलक्षणसंबन्धाभावात्काव्यशब्देऽप्यपि तथा भाव्यमिति वा-  
च्यम् । भावनाक्रियावादिभिस्तथाङ्गीकृतत्वात् । किंच मा चान्यत्र तथा-  
स्त्वन्वयव्यतिरेकाभ्यामिह तथावगमात् । तदुक्तम्—

‘भावाभिनयसंबन्धान्भावयन्ति रसानिमान् ।

यस्मात्तस्मादमी भावा विज्ञेया नाट्ययोक्तृभिः ॥’

इति । कथं पुनरगृहीतसंबन्धेभ्यः पदेभ्यः स्थाय्यादिप्रतिपत्तिरिति चेन्नोके  
तथाविधचेष्टायुक्तस्त्रीपुंसादिषु रत्याद्यविनाभावदर्शनादिहापि तथोपनिबन्धे  
सति रत्याद्यविनाभूतचेष्टादिप्रतिपादकशब्दश्रवणादभिधेया विनाभावेन ला-  
क्षणिकी रत्यादिप्रतीतिः । यथा च काव्यार्थस्य रसभावकत्वं तथाग्रे  
वक्ष्यामः ।

रसः स एव स्वाद्यत्वाद्रसिकस्यैव वर्तनात् ।

नानुकार्यस्य वृत्तत्वात्काव्यस्यातत्परत्वतः ॥ ३८ ॥

द्रष्टुः प्रतीतिर्व्रीडेर्ष्यारागद्वेषप्रसङ्गतः ।

लौकिकस्य स्वरमणीसंयुक्तस्यैव दर्शनात् ॥ ३९ ॥

काव्यार्थोपप्लवितो रसिकवर्ती रत्यादिः स्थायीभावः स इति प्रतिनि-  
दिश्यते । स च स्वाद्यतां निर्भरानन्दसंविदात्मतामापाद्यमानो रसो रसिक-  
वर्तीति वर्तमानत्वान्नानुकार्यरामादिवर्ती वृत्तत्वात्तस्य । अथ शब्दोपहित-  
रूपत्वेनावर्तमानस्यापि वर्तमानवदवभासनमिष्यत एव । तथापि तदवभास-

स्यास्मदादिभिरनुभूयमानत्वादसत्समतैकास्वादं प्रति विभावत्वेन तु रामा-  
देर्वर्तमानवदवभासनमिष्यत एव । किंच न काव्यं रामादीनां रसोपजननाय  
कविभिः प्रवर्त्यते । अपि तु सहृदयानानन्दयितुम् । स च समस्तभावक-  
स्वसंवेद्य एव । यदि चानुकार्यस्य रामादेः शृङ्गारः स्यात्ततो नाटकादौ त-  
दर्शने लौकिक इव नायके शृङ्गारिणि स्वकान्तासंयुक्ते दृश्यमाने शृङ्गार-  
वानयमिति प्रेक्षकाणां प्रतीतिमात्रं भवेन्न रसानां स्वादः सत्पुरुषाणां च  
लज्जेतरेषां त्वसूयानुरागापहारेच्छादयः प्रसज्येरन् । एवं च सति रसा-  
दीनां व्यङ्ग्यत्वमपास्तम् । अन्यतो लब्धसत्ताकं वस्तुन्येनापि व्यज्यते ।  
प्रदीपेनेव घटादि । न तु तदानीमेवाभिव्यञ्जकत्वाभिमतेरापाद्य स्वभावम् ।  
भाव्यन्ते च विभावादिभिः प्रेक्षकेषु रसा इत्यावेदितमेव ।

ननु च सामाजिकाश्रयेषु रसेषु को विभावः । कथं च सीतादीनां च  
देवीनां विभावत्वेनाविरोध उच्यते ।

**धीरोदात्ताद्यवस्थानां रामादिः प्रतिपादकः ।**

**विभावयति रत्यादीन्स्वदन्ते रसिकस्य ते ॥ ४० ॥**

न हि कवयो योगिन इव ध्यानचक्षुषा ध्यात्वा प्रातिस्विकीं रामादी-  
नामवस्थां इतिहासवदुपनिबध्नन्ति । किं तर्हि सर्वलोकसाधारणाः स्वोत्प्रे-  
क्षाकृतसन्निधयो धीरोदात्ताद्यवस्थाः कचिदाश्रयमात्रदायिन्यो दधति ।

**ता एव च परित्यक्तविशेषा रसहेतवः ।**

तत्र सीतादिशब्दाः परित्यक्तजनकतनयादिविशेषाः स्त्रीमात्रवाचिनः  
किमिवानिष्टं कुर्युः । किमर्थं तर्ह्युपादीयन्त इति चेदुच्यते—

**क्रीडतां मृण्मयैर्यद्वद्वालानां द्विरदादिभिः ॥ ४१ ॥**

**स्वोत्साहः स्वदते तद्वच्छ्रोतृणामर्जुनादिभिः ।**

एतदुक्तं भवति । नात्र लौकिकशृङ्गारादिविख्यादिविभावादीनामुप-  
योगः । किं तर्हि प्रतिपादितप्रकारेण लौकिकरसविलक्षणत्वं नाट्यरसानाम् ।  
यदाह—‘अष्टौ नाट्यरसाः स्मृताः’ इति ।

**काव्यार्थभावनास्वादो नर्तकस्य न वार्यते ॥ ४२ ॥**

नर्तकोऽपि न लौकिकरसेन रसवान्भवति । तदानीं भोग्यत्वेन स्वमहि-  
लादेरग्रहणात्काव्यार्थभावनया त्वम्मादादिव काव्यरमास्वादोऽस्यापि न  
वार्यते ।

कथं च काव्यात्स्वादोद्भूतिः किमात्मा चासाविति व्युत्पाद्यते—

स्वादः काव्यार्थसंभेदादात्मानन्दसमुद्भवः ।

विकाशविस्तरक्षोभविशेषैः स चतुर्विधः ॥ ४३ ॥

शृङ्गारवीरबीभत्सरौद्रेषु मनसः क्रमात् ।

हास्याद्भुतभयोत्कर्षकरुणानां त एव हि ॥ ४४ ॥

अतस्तज्जन्यता तेषामत एवावधारणम् ।

काव्यार्थेन विभावादि संसृष्टस्याख्यात्मकेन भावकचेतसः संभेदेऽन्योन्य-  
संचलने प्रत्यस्तमितस्वपरविभागे सति प्रबलतरस्वानन्दोद्भूतिः स्वादः ।  
तस्य च सामान्यात्मकत्वेऽपि प्रतिनियतविभावादिकारणजन्यत्वेन संभेदेन  
चतुर्धा चित्तभूमयो भवन्ति । तद्यथा—शृङ्गारे विकाशः, वीरे विस्तरः,  
बीभत्से क्षोभः, रौद्रे विक्षेप इति । तदन्येषां चतुर्णां हास्याद्भुतभयानकक-  
रुणानां स्वसामग्रीलब्धपरिपोषाणां त एव चत्वारो विकासाद्याश्चेतसः सं-  
भेदाः । अत एव—

‘शृङ्गाराद्धि भवेद्भास्यो रौद्राच्च करुणो रसः ।

वीराच्चैवाद्भुतोत्पत्तिर्बीभत्साच्च भयानकः ॥’

इति । हेतुहेतुमद्भावा एव संभेदोपेक्षया दर्शितो न कार्यकारणभावाभिप्रायेण  
तेषां कारणान्तरजन्यत्वात् ।

‘शृङ्गारानुकृतिर्या तु स हास्य इति कीर्तितः ।’

इत्यादिना विकासादिसंभेदैकत्वस्यैव स्फुटीकरणादवधारणमप्यत एवाष्टाङ्गिनि  
संभेदानां भावात् । ननु च युक्तं शृङ्गारवीरहास्यादिषु प्रमोदात्मकेषु वा-  
क्यार्थसंभेदादानन्दोद्भव इति । करुणादौ तु दुःखात्मकत्वे कथमिवासौ  
प्रादुष्यात् । तथाहि । तत्र करुणात्मककाव्यश्रवणाद्दुःखाविर्भावोऽश्रुपाता-  
दयश्च रसिकानामपि प्रादुर्भवन्ति । न चैतदानन्दात्मकत्वे सति युज्यते ।  
सत्यमेतत् । किंतु तादृश एवासावानन्दः सुखदुःखात्मको यथा प्रहरणादिषु  
संभोगावस्थायां कुट्टमिते स्त्रीणामन्यश्च लौकिकात्करुणात्काव्यकरुणः । त-  
थाह्यत्रोत्तरोत्तरा रसिकानां प्रवृत्तयः । यदि वा लौकिककरुणवद्दुःखात्म-  
कत्वमेवेह स्यात्तदा न कश्चित्प्रवर्तेत । ततः कारुण्यैकरसानां रामाय-  
णादिमहाप्रबन्धानामुच्छेद एव भवेदश्रुपातादयश्चेति वृत्तवर्णनार्कणनेन वि-  
निपातितेषु लौकिकवैकल्यदर्शनादिवत्प्रेक्षकाणां प्रादुर्भवन्तो न विरुध्यन्ते ।  
तस्माद्रसान्तरवत्करुणस्याप्यानन्दात्मकत्वमेव ।

ननु शान्तरसस्यानभिधेयत्वाद्यद्यपि नाट्येऽनुप्रवेशो नास्ति तथापि सूक्ष्मातीतादिवस्तूनां सर्वेषामपि शब्दप्रतिपाद्यताया विद्यमानत्वात्काव्यविषयत्वं न निवार्यते । अतस्तदुच्यते—

शमप्रकर्षो निर्वाच्यो मुदितादेस्तदात्मता ॥ ४५ ॥

शान्तो हि यदि तावत्

‘न यत्र दुःखं न सुखं न चिन्ता न द्वेषरागौ न च काचिदिच्छा ।

रसस्तु शान्तः कथितो मुनीन्द्रैः सर्वेषु भावेषु शमप्रधानः ॥’

इत्येवंलक्षणः, तदा तस्य मोक्षावस्थायामेवात्मस्वरूपापत्तिलक्षणायां प्रादुर्भावात्तस्य च स्वरूपेणानिर्वचनीयता । तथाहि श्रुतिरपि स एष नेति नेत्यन्यापोहरूपेणाह न च तथाभूतस्य शान्तरसस्य सहृदयाः स्वादयितारः सन्त्यथ तदुपायभूतो मुदितामैत्रीकरुणोपेक्षादिलक्षणस्तस्य च विकाशविस्तारक्षोभविक्षेपरूपतैवेति । तदुक्त्यैव शान्तरसास्वादो निरूपितः ।

इदानीं विभावादिविषयावान्तरकाव्यव्यापारप्रदर्शनपूर्वकः प्रकरणेनोपसंहारः प्रतिपाद्यते—

पदार्थैरिन्दुनिर्वेदरोमाञ्चादिस्वरूपकैः ।

काव्याद्विभावसंचार्यनुभावप्रख्यतां गतैः ॥ ४६ ॥

भावितः स्वदते स्थायी रसः स परिकीर्तितः ।

अतिशयोक्तिरूपकाव्यव्यापाराहितविशेषैश्चन्द्राद्यैरुद्दीपनविभावैः प्रमदाप्रभृतिभिरालम्बनविभावैर्निर्वेदादिभिर्व्यभिचारिभावै रोमाञ्चाश्रुभ्रूक्षेपकटाक्षद्यैरनुभावैरवान्तरव्यापारतया पदार्थीभूतैर्वाक्यार्थः स्थायीभावो विभावितो भावरूपतामानीतः स्वदते स रस इति प्राक्प्रकरणे तात्पर्यम् ।

विशेषलक्षणान्युच्यन्ते—तत्राचार्येण स्थायिनां रत्यादीनां शृङ्गारादीनां च गृह्यलक्षणानि विभावादिप्रतिपादनेनोदितानि । अत्र तु—

लक्षणैक्यं विभावैक्यादभेदाद्रसभावयोः ॥ ४७ ॥

क्रियत इति वाक्यशेषः ।

तत्र तावच्छृङ्गारः—

रम्यदेशकलाकालवेषभोगादिसेवनैः ।

प्रमोदात्मा रतिः सैव यूनोरन्योन्यरक्तयोः ।

प्रहृष्यमाणा शृङ्गारो मधुराङ्गविचेष्टितैः ॥ ४८ ॥

इत्थमुपनिबध्यमानं काव्यं शृङ्गारास्वादाय प्रभवतीति । कव्युपदेश-  
रमेतत् ।

तत्र देशविभावो यथोत्तररामचरिते—

‘स्मरसि सुतनु तस्मिन्पर्वते लक्ष्मणेन  
प्रतिविहितसपर्यामुस्थयोस्तान्यहानि ।  
स्मरसि सरसतीरां तत्र गोदावरीं वा  
स्मरसि च तदुपान्तेष्वावयोर्वर्तनानि ॥’

कलाविभावो यथा—

‘हस्तैरन्तर्निहितवचनैः सूचितः सम्यगर्थः  
पादन्यासैर्लयमुपगतस्तन्मयत्वं रसेषु ।  
शाखायोनिर्मृदुराभिनयः षड्विकल्पोऽनुवृत्तै-  
र्भावे भावे नुदति विषयान्नागबन्धः स एव ॥’

यथा च—

‘व्यक्तिर्व्यञ्जनधातुना दशविधेनाप्यत्र लब्धामुना  
विस्पष्टो द्रुतमध्यलम्बितपरिच्छिन्नस्त्रिधायं लयः ।  
गोपुच्छप्रमुखाः क्रमेण गतयस्तिस्त्रोऽपि संपादिता-  
स्तत्त्वौघानुगताश्च वाद्यविधयः सम्यक्त्रयो दर्शिताः ॥’

कालविभावो यथा कुमारसंभवे—

‘असूत सद्यः कुसुमान्यशोकः स्कन्धात्प्रभृत्येव सपल्लवानि ।  
पादेन चापैक्षत सुन्दरीणां संपर्कमासिञ्जितनूपुरेण ॥’

इत्युपक्रमे—

‘मधु द्विरेफः कुसुमैकपात्रे पपौ प्रियां स्वामनुवर्तमानः ।  
शृङ्गेण संस्पर्शनिमीलिताक्षीं मृगीमकण्डूयत कृष्णसारः ॥’

वेषविभावो यथा तत्रैव—

‘अशोकनिर्भीस्तपद्मरागमाकृष्टहेमद्युतिकर्णिकारम् ।  
मुक्ताकलापीकृतसिन्दुवारं वसन्तपुष्पाभरणं वहन्ति ॥’

उपभोगविभावो यथा—

‘चक्षुर्लसमषीकणं कवलितस्ताम्बूलरागोऽधरे  
विश्रान्ता कबरी कपोलफलके लुप्तेव गात्रद्युतिः ।

जाने संप्रति मानिनि प्रणयिना कैरप्युपायक्रमै-  
र्भग्नो मानमहातरुस्तरुणि ते चेतःस्थलीवर्धितः ॥'

प्रमोदात्मा रतिर्यथा मालतीमाधवे—

‘जगति जयिनस्ते ते भावा नवेन्दुकलादयः  
प्रकृतिमधुराः सन्त्येवान्ये मनो मदयन्ति ये ।  
मम तु यदियं याता लोके विलोचनचन्द्रिका  
नयनविषयं जन्मन्येकः स एव महोत्सवः ॥’

युवतिविभावो यथा मालविकाग्निमित्रे—

‘दीर्घाक्षं शरदिन्दुकान्ति वदनं बाहू नतावंसयौः  
संक्षिप्तं निबिडोन्नतस्तनुरः पार्श्वे प्रमृष्टे इव ।  
मध्यः पाणिमितो नितम्बि जघनं पादावरालङ्गुली  
छन्दो नर्तयितुर्यथैव मनसः स्पष्टं तथास्या वपुः ॥

यूनोर्विभावो यथा मालतीमाधवे—

‘भूयो भूयः सविधनगरीस्थयया पर्यटन्तं  
दृष्ट्वा दृष्ट्वा भवनवलभीतुङ्गवातायनस्था ।  
माताः कामं नवमिव रतिर्मालती माधवं य-  
द्वाढोत्कण्ठा लुलितललितैरङ्गकैस्ताम्यतीति ॥’

अन्योन्यानुरागो यथा तत्रैव—

‘यान्त्या मुहुर्वलितकन्धरमाननं त-  
दावृत्तवृत्तशतपत्रनिभं वहन्त्या ।  
दिग्धोऽमृतेन च विषेण च पक्षमलाक्ष्या  
गाढं निखात इव मे हृदये कटाक्षः ॥’

मधुराङ्गविचेष्टितं यथा तत्रैव—

‘स्तिमितविकसितानामुल्लसद्भूलतानां  
मसृणमुकुलितानां प्रान्तविस्तारभाजाम् ।  
प्रतिनयननिपाते किञ्चिदाकुञ्चितानां  
विविधमहमभूवं पात्रमालोकितानाम् ॥’  
ये सत्त्वजाः स्थायिन एव चाष्टौ  
त्रिंशन्नयो ये व्यभिचारिणश्च ।



एकोनपञ्चाशदमी हि भावा  
युक्त्या निबद्धाः परिपोषयन्ति ।

आलस्यमौघ्यं मरणं जुगुप्सा

तस्याश्रयाद्वैतविरुद्धमिष्टम् ॥ ४९ ॥

त्रयस्त्रिंशद्व्यभिचारिणश्चाष्टौ स्थायिन अष्टौ सात्त्विकाश्चेत्येकोनपञ्चाशत् ।  
युक्ताङ्गत्वेनोपनिबध्यमानाः शृङ्गारं संपादयन्त्यालस्यौघ्यजुगुप्सामरणादी-  
न्येकालम्बनविभावाश्रयत्वेन साक्षादङ्गत्वेन चोपनिबध्यमानानि विरुध्यन्ते ।  
प्रकारान्तरेण चाविरोधः प्राप्यनिपाति एव ।

विभागस्तु—

अयोगो विप्रयोगश्च संभोगश्चेति स त्रिधा ।

अयोगविप्रयोगविशेषत्वाद्विप्रलम्भस्यैतत्सामान्याभिधायित्वेन विप्रलम्भ-  
शब्द उपचरितवृत्तिर्मा भूदिति न प्रयुक्तः । तथाहि । दत्त्वा संकेतम-  
प्राप्तेऽवध्यतिक्रमे साध्येन नायिकान्तरानुसरणाच्च विप्रलम्भशब्दस्य मुख्य-  
प्रयोगो वञ्चनार्थत्वात् ।

तत्रायोगोऽनुरागेऽपि नवयोरेकचित्तयोः ॥ ५० ॥

पारतन्त्र्येण दैवाद्वा विप्रकर्षादसंगमः ।

योगोऽन्योन्यस्वीकारस्तदभावस्त्वयोगः । पारतन्त्र्येण विप्रकर्षादैवपि-  
त्राद्यायत्तत्वात्सागरिकामालत्योर्वत्सराजमाधवाभ्यामिव दैवाद्गौरीशिवयोरि-  
वासमागमोऽयोगः ।

दशावस्थः स तत्रादावभिलाषोऽथ चिन्तनम् ॥ ५१ ॥

स्मृतिर्गुणकथोद्वेगप्रलापोन्मादसंज्वराः ।

जडता मरणं चेति दुरवस्थं यथोत्तरम् ॥ ५२ ॥

अभिलाषः स्पृहा तत्र कान्ते सर्वाङ्गसुन्दरे ।

दृष्टे श्रुते वा तत्रापि विस्मयानन्दसाध्वसाः ॥ ५३ ॥

साक्षात्प्रतिकृतिस्वप्नच्छायामायासु दर्शनम् ।

श्रुतिर्व्याजात्सखीगीतमागधादिगुणस्तुतेः ॥ ५४ ॥

अभिलाषो यथा शाकुन्तले—

‘असंशयं क्षत्रपरिग्रहक्षमा यदार्थमस्यामभिलाषि मे मनः ।

सतां हि संदेहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः ॥’

विस्मयो यथा—

‘स्तनावालोक्त्य तन्वङ्ग्याः शिरः कम्पयते युवा ।

तयोरन्तरनिर्मग्नां दृष्टिमुत्पाटयन्निव ॥’

आनन्दो यथा विद्वशालभञ्जिकायाम्—

‘सुधाबद्धग्रासैरुपवनचकोरैः कवलितान्

किरञ्ज्योत्स्नामच्छां लवलिफलपाकप्रणयिनीम् ।

उपप्राकाराग्रं ग्रहिणु नयने तर्कय मना-

गनाकाशे कोऽयं गलितहरिणः शीतकिरणः ॥’

साध्वसं यथा कुमारसंभवे—

‘तं वीक्ष्य वेपथुमती सरसाङ्गयष्टि-

निक्षेपणाय पदमुद्धृतमुद्वहन्ती ।

मार्गाचलव्यतिकराकुलितेव सिन्धुः

शैलाधिराजतनया न ययौ न तस्थौ ॥’

यथा वा—

‘व्याहता प्रतिवचो न संदधे गन्तुमैच्छदवलम्बितांशुका ।

सेवते स्म शयनं पराङ्मुखी सा तथापि रतये पिनाकिनः ॥’

सानुभावविभावास्तु चिन्ताद्याः पूर्वदर्शिताः ।

गुणकीर्तनं तु स्पष्टत्वान्न व्याख्यातम् ।

दशावस्थत्वमाचार्यैः प्रायो वृत्त्या निदर्शितम् ॥ ५५ ॥

महाकविप्रबन्धेषु दृश्यते तदनन्तता ।

दिङ्मात्रं तु—

दृष्टे श्रुतेऽभिलाषाच्च किं नौत्सुक्यं प्रजायते ॥ ५६ ॥

अप्राप्तौ किं न निर्वेदो ग्लानिः किं नातिचिन्तनात् ।

शेषं प्रच्छन्नकामितादि कामसूत्रादवगन्तव्यम् ।

अथ विप्रयोगः—

विप्रयोगस्तु विश्लेषो रूढविस्मययोर्द्विधा ॥ ५७ ॥

मानप्रवासभेदेन मानोऽपि प्रणयेर्ष्ययोः ।

प्राप्तयोरप्राप्तिर्विप्रयोगः । तस्य द्वौ भेदौ—मानः प्रवासश्च । मानविप्र-  
योगोऽपि द्विविधः—प्रणयमान ईर्ष्यामानश्चेति ।

तत्र प्रणयमानः स्यात्कोपावसितयोर्द्वयोः ॥ ५८ ॥

प्रेमपूर्वको वशीकारः प्रणयः । तद्भङ्गो मानः प्रणयमानः । स च द्वयो-  
र्नायकयोर्भवति । तत्र नायकस्य यथोत्तररामचरिते—

‘अस्मिन्नेव लतागृहे त्वमभवस्तन्मार्गदत्तेक्षणः

सा हंसैः कृतकौतुका चिरमभूद्गोदावरीसैकते ।

आयान्त्या परिदुर्मनायितमिव त्वां वीक्ष्य बद्धस्तया

कातर्यादरविन्द्रकुङ्कुलनिभो मुग्धः प्रणामाञ्जलिः ॥’

नायिकाया यथा श्रीवाक्पतिराजदेवस्य—

‘प्रणयकुपितां दृष्ट्वा देवीं ससंभ्रमविस्मित-

स्त्रिभुवनगुरुभीत्या सद्यः प्रणामपरोऽभवत् ।

नमितशिरसो गङ्गालोके तथा चरणाहता-

ववतु भवतख्यक्षस्यैतद्विलक्षमवस्थितम् ॥’

उभयोः प्रणयमानो यथा—

‘पैणअकुविआण दोह्वि अलिअपसुत्ताण माणइन्ताणम् ।

णिच्चलणिरुद्धणीसासदिण्णअण्णाण को मल्लो ॥’

स्त्रीणामीर्ष्याकृतो मानः कोपोऽन्यासङ्गिनि प्रिये ।

श्रुते वानुमिते दृष्टे श्रुतिस्तत्र सखीमुखात् ॥ ५९ ॥

उत्स्वभायितभोगाङ्कगोत्रस्खलनकल्पितः ।

त्रिधानुमानिको दृष्टः साक्षादिन्द्रियगोचरः ॥ ६० ॥

ईर्ष्यामानः पुनः स्त्रीणामेव नायिकान्तरसङ्गिनि स्वकान्ते उपलब्धे सत्य-  
न्यासङ्गः श्रुतो वानुमितो दृष्टो वा स्यात् । तत्र श्रवणं सखीवचनात्तस्या  
विश्वास्यत्वात् । यथा ममैव—

‘सुभ्रु त्वं नवनीतकल्पहृदया केनापि दुर्मन्त्रिणा

मिथ्यैव प्रियकारिणा मधुमुखेनास्मासु चण्डीकृता ।

१. ‘कोपावेशित’ इति पाठः.

२. ‘प्रणयकुपितयोर्द्वयोरप्यलीकप्रसुप्तयोर्मानवतोः ।

निश्चलनिरुद्धनिश्वासदत्तकर्णयोः को मल्लः ॥’ इति च्छाया.

किं त्वेतद्विमृश क्षणं प्रणयिनामेणाक्षि कस्ते हितः  
किं धात्रीननया वयं किमु सखी किं वा किमस्मत्सुहृत् ॥  
उत्स्वप्नायितो यथा रुद्रस्य—

‘निर्मग्नेन मयाम्भसि स्मरभरादाली समालिङ्गिता  
केनालीकमिदं तवाद्य कथितं राधे मुधा ताम्यसि ।  
इत्युत्स्वप्नपरम्परासु शयने श्रुत्वा वचः शार्ङ्गिणः  
सव्याजं शिथिलीकृतः कमलया कण्ठग्रहः पातु वः ॥’

भोगाङ्कानुमितो यथा—

‘नवनखपदभङ्गं गोपयस्यंशुकेन  
स्थगयसि पुनरोष्ठं पाणिना दन्तदष्टम् ।  
प्रतिदिशमपरस्त्रीसङ्गशंसी विसर्प-  
न्नवपरिमलगन्धः केन शक्यो वरीतुम् ॥’

गोत्रस्खलनकल्पितो यथा—

‘केलीगोत्रस्खलणे विकुप्पए केअवं अआणन्ती ।  
दुट्ट उअसु परिहासं जाआ सच्चं विअ परुण्णा ॥’

दृष्टो यथा श्रीमुखस्य—

‘प्रणयकुपितां दृष्ट्वा देवीं ससंभ्रमविस्मित-  
स्त्रिभुवनगुरुभीत्या सद्यः प्रणामपरोऽभवत् ।  
नमितशिरसो गङ्गालोके तया चरणाहता-  
ववतु भवतख्यक्षस्यैतद्विलक्षमवस्थितम् ॥’

एषाम्—

यथोत्तरं गुरुः षड्भिरूपायैस्तमुपाचरेत् ।  
साम्ना भेदेन दानेन नत्युपेक्षारसान्तरैः ॥ ६१ ॥  
तत्र प्रियवचः साम भेदस्तत्सख्युपार्जनम् ।  
दानं व्याजेन भूषादेः पादयोः पतनं नतिः ॥ ६२ ॥  
सामादौ तु परिक्षीणे स्यादुपेक्षावधीरणम् ।  
रभसत्रासहर्षादेः कोपभ्रंशो रसान्तरम् ॥ ६३ ॥  
कोपचेष्टाश्च नारीणां प्रागेव प्रतिपादिताः ।

१. ‘केलीगोत्रस्खलने विकुप्यति कैतवमजानन्ती ।

दुष्ट पश्य परिहासं जाया सत्यमिव प्ररुदिता ॥’ इति च्छाया.

तत्र प्रियवचः साम यथा ममैव—

‘स्मितज्योत्स्नाभिस्ते धवलयति विश्वं मुखशशी  
दृशस्ते पीयूषद्रवमिव विमुञ्चन्ति परितः ।  
वपुस्ते लावण्यं किरति मधुरं दिक्षु तदिदं  
कुतस्ते पारुण्यं सुतनु हृदयेनाद्य गुणितम् ॥’

यथा वा—

‘इन्दीवरेण नयनं मुखमम्बुजेन कुन्देन दन्तमधरं नवपल्लवेन ।  
अङ्गानि चम्पकदलैः स विधाय वेधाः कान्ते कथं रचितवानुपलेन चेतः ॥’  
नायिकाभङ्गीममावर्गेनभेदो यथा ममैव—

‘कृतेऽप्याज्ञाभङ्गे कथमिव मया ते प्रणतयो  
धृताः स्मित्वा हस्ते विसृजसि रुपं सुभ्रु बहुशः ।  
प्रकोपः कोऽप्यन्यः पुनरयमसीमाद्य गुणितो  
वृथा यत्र स्निग्धाः प्रियसहचरीणामपि गिरः ॥

दानं व्याजेन भूषादेर्यथा मावे—

‘मुहुरुपहसितामिवालिनदै-  
वितरसि नः कलिकां किमर्थमेनाम् ।  
अधिरजनि गतेन धाम्नि तस्याः  
शठ कलिरेव महान्स्त्वयाद्य दत्तः ॥’

पादयोः पतनं नतिर्यथा—

‘णेऽरकोडिविलग्नं चिहुरं दइअस्स पाअपडिअस्स ।  
हिअअं माणपउत्थं उम्मोअं त्ति च्चिअ कहेइ ॥’

उपेक्षा तदवधीरणं यथा—

‘किं गतेन न हि युक्तमुपैतुं नेश्वरे परुषता सखि साध्वी ।  
आनयैनमनुनीय कथं वा विप्रियाणि जनयन्ननुनेयः ॥’

रभसत्रासहर्षादे रसान्तरात्कोपभ्रंशो यथा ममैव—

‘अभिव्यक्तालीकः सकलविफलोपायविभव-  
श्चिरं ध्यात्वा सद्यः कृतकृतकसंरम्भनिपुणम् ।

१. ‘नूपुरकोटिविलग्नं चिकुरं दयितस्य पादपतितस्य ।

हृदयं मानपदोत्थमुन्मुक्तमित्येव कथयति ॥’ इति च्छाया.

इतः पृष्ठे पृष्ठे किमिदमिति संत्रास्य सहसा  
कृताश्लेषां धूर्तः स्मितमधुरमालिङ्गति वधूम् ॥'

अथ प्रवासविप्रयोगः—

कार्यतः संभ्रमाच्छापात्प्रवासो भिन्नदेशता ॥ ६४ ॥

द्वयोस्तत्राश्रुनिःश्वासकाश्यलम्बालकादिता ।

स च भावी भवन्भूतस्त्रिधाद्यो बुद्धिपूर्वकः ॥ ६५ ॥

आद्यः कार्यजः समुद्रगमनसेवादिकार्यवशप्रवृत्तौ बुद्धिपूर्वकत्वाद्भूतभवि-  
ष्यद्वर्तमानतया त्रिविधः ।

तत्र यास्यत्प्रवासो यथा—

‘होन्तपहिअस्स जाआ आउच्छणजीअधारणरहस्सम् ।

पुच्छन्ती भमइ घरं घरेसु पिअविरहसहिरीआ ॥’

गच्छत्प्रवासो यथामरुशतके—

‘प्रहरविरतौ मध्ये बाहुस्ततोऽपि परेऽथवा

दिनकृति गते वास्तं नाथ त्वमद्य समेष्यसि ।

इति दिनशतप्राप्यं देशं प्रियस्य यियासतो

हरति गमनं बालालपैः सबाप्पगलज्जलैः ॥’

यथा वा तत्रैव—

‘देशैरन्तरिता शतैश्च सरितामुर्वीभृतां काननै-

र्यन्नेनापि न याति लोचनपथं कान्तेति जानन्नपि ।

उद्धीवश्चरणार्धरुद्धवसुधः कृत्वाश्रुपूर्णे दृशौ

तामाशां पथिकस्तथापि किमपि ध्यात्वा चिरं तिष्ठति ॥’

गतप्रवासो यथा मेघदूते—

‘उत्सङ्गे वा मलिनवसने सौम्य निक्षिप्य वीणां

मद्गोत्राङ्गं विरचितपदं गेयमुद्गातुकामा ।

तन्त्रीमार्द्रा नयनसलिलैः सारयित्वा कथंचि-

द्भूयो भूयः स्वयमपि कृतां मूर्च्छनां विस्मरन्ती ॥’

१. ‘भविष्यत्पथिकस्य जाया आयुःक्षणजीवधारणरहस्यम् ।

पृच्छन्ती भ्रमति गृहाद्गृहेषु प्रियविरहसहोका ॥’ इति च्छाया.

आगच्छदागतयोस्तु प्रवासाभावादेष्यत्प्रवासस्य च गतप्रवासाविशेषा-  
त्रैविध्यमेव युक्तम् ।

**द्वितीयः सहस्रोत्पन्नो दिव्यमानुषविप्लवात् ।**

उत्पातनिर्घातवातादिजन्यविप्लवात्परचक्रादिजन्यविप्लवाद्वाबुद्धिपूर्वकत्वा-  
देकरूप एव संभ्रमजः प्रवासः । यथोर्वशीपुरुषवसोर्विक्रमोर्वश्याम् । यथा  
च कपालकुण्डलापहृतायां मालत्यां मालतीमाधवयोः ।

**स्वरूपान्यत्वकरणाच्छापजः सन्निधावपि ॥ ६६ ॥**

यथा कादम्बर्या वैशंपायनस्येति ।

**मृते त्वेकत्र यत्रान्यः प्रलपेच्छोक एव सः ।**

**व्याश्रयत्वान्न शृङ्गारः प्रत्यापन्ने तु नेतरः ॥ ६७ ॥**

यथेन्दुमतीमरणादजस्य करुण एव रघुवंशे । कादम्बर्या तु प्रथमं क-  
रुण आकाशसरस्वतीवचनादूर्ध्वं प्रवासशृङ्गार एवेति ।

तत्र नायिकां प्रति नियमः—

**प्रणयायोगयोरुक्ता प्रवासे प्रोषितप्रिया ।**

**कलहान्तरितेर्ष्यायां विप्रलब्धा च खण्डिता ॥ ६८ ॥**

अथ संभोगः—

**अनुकूलौ निषेवेते यत्रान्योन्यं विलासिनौ ।**

**दर्शनस्पर्शनादीनि स संभोगो मुदान्वितः ॥ ६९ ॥**

यथोत्तररामचरिते—

‘किमपि किमपि मन्दं मन्दमासत्तियोगा-

दविरलितकपोलं जल्पतोरक्रमेण ।

सपुलकपरिरम्भव्यापृतैकैकदोष्णो-

रविदितगतयामा रात्रिरेव व्यरंसीत् ॥’

अथवा । ‘प्रिये, किमेतत् ।

विनिश्चेतुं शक्यो न सुखमिति वा दुःखमिति वा

प्रमोहो निद्रा वा किमु विषविसर्पः किमु मदः ।

तव स्पर्शे स्पर्शे मम हि परिमूढेन्द्रियगणो  
विकारः कोऽप्यन्तर्जडयति च तापं च कुरुते ॥'

यथा च ममैव—

‘लावण्यामृतवर्षिणि प्रतिदिशं कृष्णागरुश्यामले  
वर्षाणामिव ते पयोधरभरे तन्वङ्गि दूरोन्नते ।  
नासावंशमनोज्ञकेतकतनुर्भूपत्रगर्भोल्लस-  
त्पुष्पश्रीस्तिलकः सहेलमलकैर्भृङ्गैरिवापीयते ॥’

चेष्टास्तत्र प्रवर्तन्ते लीलाद्या दश योपिताम् ।  
दाक्षिण्यमार्दवप्रेम्णामनुरूपाः प्रियं प्रति ॥ ७० ॥

ताश्च सोदाहतयो नायकप्रकाशे दर्शिताः ।

रमयेच्चाटुकृत्कान्तः कलाक्रीडादिभिश्च ताम् ।

न ग्राम्यमाचरेत्किञ्चिन्नर्मभ्रंशकरं न च ॥ ७१ ॥

ग्राम्यः संभोगो रङ्गे निषिद्धोऽपि काव्येऽपि न कर्तव्य इति पुनर्निषि-  
ध्यते । यथा रत्नावल्याम्—

‘स्पृष्टस्त्वयैष दयिते स्मरपूजाव्याघृतेन हस्तेन ।

उद्भिन्नापरमृदुतरकिसलय इव लक्ष्यतेऽशोकः ॥’

इत्यादि । नायकनायिकाकैशिकीवृत्तिनाटकनाटिकालक्षणाद्युक्तं कविपरम्प-  
रावगतं स्वयमौचित्यसंभावनानुगुण्येनोत्प्रेक्षितं चानुसंधानः सुकविः शृङ्गार-  
मुपनिबध्नीयात् ।

अथ वीरः—

वीरः प्रतापविनयाध्यवसायसत्त्व-

मोहाविषादनयविस्मयविक्रमाद्यैः ।

उत्साहभूः स च दयारणदानयोगा-

त्रेधा किलात्र मतिगर्वधृतिप्रहर्षाः ॥ ७२ ॥

प्रतापविनयादिभिर्विभावितः करुणायुद्धदानाद्यैरनुभावितो गर्वधृतिहर्षा-  
मर्षस्मृतिमतिवितर्कप्रभृतिभिर्भावित उत्साहः स्थायी स्वदते भावकमनोवि-  
स्तारानन्दाय प्रभवतीत्येष वीरः । तत्र दयावीरो यथा नागानन्दे जीमूत-



वाहनस्य । युद्धवीरो वीरचरिते रामस्य । दानवीरः परशुरामबलिप्रभृतीनाम् ।

‘त्यागः सप्तसमुद्रमुद्रितमहीनिर्व्याजदानावधिः’ इति ।

‘स्वर्गग्रन्थिविमुक्तसंधि विकसद्वक्षःस्फुरत्कौस्तुभं  
निर्यत्राभिसरोजकुञ्जलकुटीगम्भीरसामध्वनि ।

पात्रावाप्तिसमुत्सुकेन बलिना सानन्दमालोकितं  
पायाद्वः क्रमवर्धमानमहिमाश्चर्यं मुरारेर्वपुः ॥’

यथा च ममैव—

‘लक्ष्मीपयोधरोत्सङ्गकुङ्कुमारुणितो हरेः ।

बलिरेष स येनास्य भिक्षापात्रीकृतः करः ॥’

विनयादिषु पूर्वमुदाहृतमनुसंधेयम् । प्रतापगुणावर्जनादिना वीराणामपि  
भावात्रैधं प्रायोवादः । प्रस्रेदरक्तवदननयनादिक्रोधानुभावरहितो युद्धवी-  
रोऽन्यथा रौद्रः ।

अथ बीभत्सः—

बीभत्सः कृमिपूतिगन्धिवमधुप्रायैर्जुगुप्सैकभू-

रुद्वेगी रुधिरान्त्रकीकसवसामांसादिभिः क्षोभणः ।

वैराग्याज्जघनस्तनादिषु घृणाशुद्धोऽनुभावैर्वृतो

नासावक्रविकूणनादिभिरिहावेगार्तिशङ्कादयः ॥ ७३ ॥

अत्यन्ताहृद्यैः कृमिपूतिगन्धिप्रायविभावैरुद्धूतो जुगुप्सास्थायिभावपरि-  
पोषणलक्षण उद्वेगी बीभत्सः । यथा मालतीमाधवे—

‘उत्कृत्योत्कृत्य कृत्तिं प्रथममथ पृथूच्छोपभूयांसि मांसा-

न्यंसस्फिक्पृष्ठपिण्डाद्यवयवसुलभान्युग्रपूतीनि जग्ध्वा ।

आर्तः पर्यस्तनेत्रः प्रकटितदशनः प्रेतरङ्कः करङ्का-

दङ्कस्थादस्थिसंस्थं स्थपुटगतमपि क्रव्यमव्यग्रमस्ति ॥’

रुधिरान्त्रवसाकीकसमांसादिविभावः क्षोभणो बीभत्सः ।

यथा वीरचरिते—

‘आन्त्रप्रोतवृहत्कपालनलकक्रूरकणत्कङ्कण-

प्रायप्रेङ्खितभूरिभूषणरवैराघोषयन्त्यम्बरम् ।

पीतोच्छर्दितरक्तकर्दमघनप्राग्भारघोरोल्लस-

द्यालोलस्तनभारभैरववपुर्बन्धोद्धतं धावति ॥'

रम्येष्वपि रमणीयजघनस्तनादिषु वैराग्याद्धृणाशुद्धो बीभत्सः । यथा—

‘लालां वक्त्रासवं वेत्ति मांमपिण्डौ पयोधरौ ।

मांमाम्बिकूटं जघनं जनः कामग्रहातुरः ॥’

न चायं शान्त एव विरक्तो यतो बीभत्समानो विरज्यते ।

अथ रौद्रः—

क्रोधो मत्सरवैरिवैकृतमयैः पोषोऽस्य रौद्रोऽनुजः

क्षोभः स्वाधरदंशकम्पभुकुटिस्वेदास्यरागैर्युतः ।

शस्त्रोल्लासविकत्थनांसधरणीघातप्रतिज्ञाग्रहै-

रत्रामर्षमदौ स्मृतिश्चपलतामूयौघ्यवेगादयः ॥ ७४ ॥

मात्सर्यविभावो रौद्रो यथा वीरचरिते—

‘त्वं ब्रह्मवर्चसधरो यदि वर्तमानो

यद्वा स्वजातिसमयेन धनुर्धरः स्याः ।

उग्रेण भोस्तव तपस्तपसा दहामि

पक्षान्तरस्य सदृशं परशुः करोति ॥’

वैरिवैकृतादिर्यथा वेणीसंहारे—

‘लाक्षागृहानलविषान्नसमाप्रवेशैः

प्राणेषु वित्तनिचयेषु च नः प्रहृत्य ।

आकृष्टपाण्डववधूपरिधानकेशाः

स्वस्था भवन्तु मयि जीवति धार्तराष्ट्राः ॥’

इत्येवमादिविभावैः प्रस्वेदरक्तवदननयनाद्यनुभावैरमर्षादिव्यभिचारिभिः क्रो-  
धपरिपोषो रौद्रः । परशुरामभीमसेनदुर्योधनादिव्यवहारेषु वीरचरित-वेणी-  
संहारादेरनुगन्तव्यः ।

अथ हास्यः—

विकृताकृतिवाग्बैरात्मनोऽथ परस्य वा ।

हासः स्यात्परिपोषोऽस्य हास्यस्त्रिप्रकृतिः स्मृतः ॥ ७५ ॥

आत्मस्थान्विकृतपेपभाषादीन्परस्थान्वा विभावानवलम्बमानो हासस्त-  
त्परिपोषात्मा हास्यो रसो व्यधिष्ठानो भवति । स चोत्तममध्यमाधमप्रकृति-  
भेदात्षड्विधः ।

आत्मस्थो यथा रावणः—

‘जातं मे परुषेण भस्मरजसा तच्चन्दनोद्भूतं  
हारो वक्षसि यज्ञसूत्रमुचितं क्लिष्टा जटाः कुन्तलाः ।  
रुद्राक्षैः सकलैः सरत्नवलयं चित्रांशुकं वल्कलं  
सीतालोचनहारि कल्पितमहो रम्यं वपुः कामिनः ॥’

परस्थो यथा—

‘भिक्षो मांसनिषेवणं प्रकुरुषे किं तेन मद्यं विना  
किं ते मद्यमपि प्रियं प्रियमहो वाराङ्गनाभिः सह ।  
वेश्या द्रव्यरुचिः कुतस्तव धनं द्यूतेन चौर्येण वा  
चौर्यद्यूतपरिग्रहोऽपि भवतो दासस्य कान्या गतिः ॥’  
स्मितमिह विकासिनयनं किंचिल्लक्ष्यद्विजं तु हसितं स्यात् ।  
मधुरस्वरं विहसितं सशिरःकम्पमिदमुपहसितम् ॥ ७६ ॥  
अपहसितं सास्त्राक्षं विस्मिताङ्गं भवत्यतिहसितम् ।  
द्वे द्वे हसिते चैषां ज्येष्ठे मध्येऽधमे क्रमशः ॥ ७७ ॥

उत्तमस्य स्वपरस्थविकारदर्शनात्स्मितहसिते मध्यमस्य विहसितोपह-  
सितेऽधमस्यापहसितातिहसिते । उदाहृतयः स्वयमुत्प्रेक्ष्याः । व्यभिचारि-  
णश्चास्य—

निद्रालस्यश्रमग्लानिमूर्च्छाश्च सहचारिणः ।

अथाद्भुतः—

अतिलोकैः पदार्थैः स्याद्विस्मयात्मा रसोऽद्भुतः ॥ ७८ ॥  
कर्मास्य साधुवादाश्रुवेपथुस्वेदगद्गदाः ।  
हर्षावेगधृतिप्राया भवन्ति व्यभिचारिणः ॥ ७९ ॥

लोकसीमातिवृत्तपदार्थवर्णनादिविभावितः साधुवादाद्यनुभावपरिपुष्टो वि-  
स्मयः स्थायिभावो हर्षावेगादिभावितो रसोऽद्भुतः । यथा—

‘दोर्दण्डाञ्चितचन्द्रशेखरधनुर्दण्डावभङ्गोद्धत-  
ष्टङ्कारध्वनिरार्थबालचरितप्रस्तावनाडिण्डिमः ।

द्राक्पर्याप्तकपालसंपुटमिलद्ब्रह्माण्डभाण्डोदर-  
भ्राम्यत्पिण्डितचण्डिमा कथमसौ नाद्यापि विश्राम्यति ॥’

इत्यादि ।

अथ भयानकः—

विकृतस्वरसच्चादेर्भयभावो भयानकः ।

सर्वाङ्गवेपथुस्वेदशोषवैचित्र्यलक्षणः ।

दैन्यसंभ्रमसंमोहत्रासादिस्तत्सहोदरः ॥ ८० ॥

रौद्रशब्दश्रवणाद्रौद्रसत्त्वदर्शनाच्च भयस्थायिभावप्रभवो भयानको रसः ।  
तत्र सर्वाङ्गवेपथुप्रभृतयोऽनुभावाः । दैन्यादयस्तु व्यभिचारिणः । भयानको  
यथा प्रागुदाहृतः—

‘शस्त्रोत्तत्समुत्सृज्य कुञ्जीभूय शनैः शनैः ।

यथायथागतेनैव यदि शक्नोषि गम्यताम् ॥’

यथा च रत्नावल्याम्—‘नष्टं वर्षवरैः’ इत्यादि ।

यथा च—

‘स्वगेहात्पन्थानं तत उपचितं काननमथो

गिरिं तस्मात्सान्द्रद्रुमगहनमस्मादपि गुहाम् ।

तदन्वङ्गान्यङ्गैरभिनिविशमानो न गणय-

त्यरातिः कालीये तव विजययात्राचकितधीः ॥’

अथ करुणः—

इष्टनाशादनिष्टांस्तौ शोकात्मा करुणोऽनु तम् ।

निःश्वासोच्छ्वासरुदितस्तम्भप्रलपितादयः ॥ ८१ ॥

स्वापापस्मारदैन्याधिमरणालस्यसंभ्रमाः ।

विषादजडतोन्मादचिन्ताद्या व्यभिचारिणः ॥ ८२ ॥

इष्टस्य बन्धुप्रभृतेर्विनाशादनिष्टस्य तु बन्धनादेः प्राप्या शोकप्रकर्षनः

करुणः । तमन्विति तदनुभाविः श्वासादिकथनम् । व्यभिचारिणश्च स्वापा-  
पस्मारादयः । इष्टनाशात्करुणो यथा कुमारसंभवे—

‘अयि जीवितनाथ जीवमीत्यभिधायोन्धितया तया पुरः ।

ददृशे पुरुषाकृति क्षितौ हरकोपानलभस्म केवलम् ॥’

इत्यादि रतिप्रत्यापः । अनिष्टावासेः सागरिकाया बन्धनाद्यथा रत्नावल्याम् ।

प्रीतिभक्त्यादयो भावा मृगयाक्षादयो रसाः ।

हर्षोत्साहादिषु स्पष्टमन्तर्भावान्न कीर्तिताः ॥ ८३ ॥

स्पष्टम् ।

षट्त्रिंशद्भूषणादीनि सामादीन्येकविंशतिः ।

लक्ष्यसंध्यन्तराङ्गानि सालंकारेषु तेषु च ॥ ८४ ॥

‘विभूषणं चाक्षरसंहतिश्च शोभाभिमानौ गुणकीर्तनं च’ इत्येवमादीनि  
षट्त्रिंशत्काव्यलक्षणानि । ‘साम भेदः प्रदानं च’ इत्येवमादीनि संध्यन्तराण्ये-  
कविंशतिरुत्साहादिष्वालंकारेषु हर्षोत्साहादिष्वन्तर्भावान्न पृथगुक्तानि ।

रम्यं जुगुप्सितमुदारमथापि नीच-

मुग्रं प्रसादि गहनं विकृतं च वस्तु ।

यद्वाप्यवस्तु कविभावकभाव्यमानं

तन्नास्ति यन्न रसभावमुपैति लोके ॥ ८५ ॥

विष्णोः सुतेनापि धनंजयेन विद्वन्मनोरागनिबन्धहेतुः ।

आविष्कृतं मुञ्जमहीशगोष्ठीवैदग्ध्यभाजा दशरूपमेतत् ॥ ८६ ॥

इति श्रीविष्णुसूनोर्धनिकस्य कृतौ दशरूपावल्लोके

रसविचारो नाम चतुर्थः प्रकाशः समाप्तः ।

समाप्तश्चायं ग्रन्थः ।



## दशरूपकावलोके प्रमाणत्वेन समुपन्यस्तानां ग्रन्थानां ग्रन्थकाराणां च नामानि ।

अमरुशतकम्—४९, ५६, ५७, ५८, ६१, ६२, ७३, १०५, १०८, १११, १३२.

उत्तरचरितम् (उत्तररामचरितं वा)—२७, २८, ३९, ८३, ८४, ८५, १०१,  
१०९, १२५, १२९, १३३,

उदात्तराघवम्—७६, ७९, ८८, १०२, ११०.

कर्पूरमञ्जरी—८३.

कादम्बरी—१३३.

कामसूत्रम्—१२८.

काव्यनिर्णयः—१२०.

किरातम्—१०९.

कुमारसंभवम्—६४, ६५, ६८, १०९, ११२, ११३, ११८, १२५, १२८, १३९.

छालितरामम्—२७, ८३, ८५.

धनिकः (अवलोककृतः)—४८, ५१, ५२, ५४, ५६, ६४, ६५, ६६, ६७, ६८,  
६९, ७०, ७३, ९८, १०९, ११०, १२९, १३१, १३३, १३५,

नागानन्दम्—४६, ५०, ५३, ५९, ७२, १३४.

पद्मगुप्तः—६८.

पाण्डवानन्दम्—८२.

प्रियदर्शिका (प्रियदर्शना वा)—७४, ७६.

बृहत्कथा (गुणाढ्यनिर्मिता)—४१, ४२, ११४.

भट्टबाणः—६६.

भरतमुनिः—९४.

भर्तृहरिः—९७.

भर्तृहरिशतकम्—४४, १०२.

भवभूतिः—४७.

महाभारतम्—८८.

माघम्—५५, १०१, १०२, १०४, १०७, १०८, १३१.

मालतीमाधवम्—११, ४५, ५०, ६३, ६७, ७३, ७५, १०६, ११४, ११५,  
१२६, १३३, १३५.

मालविकाग्निमित्रम्—४०, ४४, ६२, ७२, ७३, ८६, १२६.

मुञ्जः—१३०.

मुद्राराक्षसम् (बृहत्कथामूलम्)—४१, ७५, ८५.

मृच्छकटिका—२९, ४५, ५९, ९०.

मेघदूतम्—१३२.

रघुः (रघुवंशो वा)—४४, १११, १३३.

रत्नावली—५, ६, ७, ८, ९, १०, १२, १३, १४, १५, १६, १७, १८, १९,  
२०, २१, २२, २३, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३२, ३३, ३४,  
३५, ३६, ३७, ४५, ५९, ७२, ७६, ७९, ८०, ८१, ८४, १०१,  
१०२, १३४, १३८, १३९.

रामाभ्युदयम्—२९.

रामायणम्—४, ४१, ५०, ७५, ८८, १२३.

रुद्रः—१३०.

वाक्पतिराजदेवः—१२९.

विकटनितम्बा—११४.

विक्रमोर्वशी—८२, ८३, १३३.

विद्धशालभञ्जिका—१२८.

वीरचरितम्—८, ३९, ४०, ४३, ४४, ५१, ५२, ७४, ७५, ८८, १०१, १०४,  
१०५, १०६, १०७, १११, ११३, १३५, १३६.

वेणीसंहारम्—५, ९, ११, १२, १३, १४, १६, २२, २३, २४, २५, २६, २७,  
२८, ३०, ३१, ३२, ३३, ३४, ३५, ३६, ३७, ३८, ८१, १०५,  
१११, १३६.

शाकुन्तलम्—६५, ६६, ८०, ८७, १२८.

षट्सहस्रीकृत्—९७.

हनुमन्नाटकम्—४४.



## दशरूपकावलोकोदाहृतश्लोकानां मातृकावर्ण- क्रमेणानुक्रमणी ।

श्लोकाः ।	कविनाम ग्रन्थनाम वा ।	पृष्ठे ।
अकृपणमतिः कामं जीव्यात् ...	वेणीसंहारे ...	३८
अच्छिन्नं नयनाम्बु ...	[अमरुशतके] ...	११२
अण्णदुणादुमहेल्लिअ ...	... ..	११५
अत्रान्तरे किमपि वाग्विभ ...	मालतीमाधवे ...	६७
अथैव किं न विमृजेयमहं ...	वेणीसंहारे ...	३०
अद्वैतं सुखदुःखयोरनु ...	[उत्तररामचरिते] ...	४५
अनाघ्रातं पुष्पं किसलय ...	शाकुन्तले ...	६५
अन्नैः स्त्रैरपि संयताग्र ...	मम (धनिकस्य) ...	५१
अन्नैः कल्पितमहल ...	[मालतीमाधवे] ...	११५
अन्यासु तावदुपमर्द ...	विकटनितम्बायाः ...	११४
अन्योन्यास्फालभिन्नद्विप ...	वेणीसंहारे ...	१३
अप्रियणि करोत्येष ...	वेणीसंहारे ...	३०
अभिव्यक्तालीकः सकल ...	मम (धनिकस्य) ...	७३, १३१
अभ्युद्गते शशिनि ...	... ..	६८
अभ्युन्नतस्तनमुरो नयने ...	मम (धनिकस्य) ...	५६
अयमुदयति चन्द्रश्च ...	... ..	९८
अयि जीवितनाथ जीवती ...	कुमारसंभवे ...	१३९
अर्विष्मन्ति विदार्य ...	... ..	८६
अर्थित्वे प्रकटीकृतेऽपि ...	वीरचरिते ...	१०४
अलसलुलितमुग्धान्यध्व ...	उत्तररामचरिते ...	१०१
अशोकनिर्भास्वितपद्म ...	कुमारसंभवे ...	१२५
असंशयं क्षत्रपरिग्रह ...	शाकुन्तले ...	१२८
असूत सद्यः कुसुमान्यशोकः ...	कुमारसंभवे ...	१२५
अस्तमितविषयसङ्गा ...	[गोवर्धनस्य] ...	१०४
अस्तापांस्तसमस्तभासि ...	रत्नावल्याम् ...	९, १२
अस्मिन्नेव लतागृहे ...	उत्तररामचरिते ...	१२९
अस्याः सर्गविधौ ...	[विक्रमोर्व्विद्याम्] ...	९५

श्लोकाः ।	कविनाम ग्रन्थनाम वा ।	पृष्ठे ।
आगच्छागच्छ सजं कुरु...	मम (धनिकस्य) ...	११०
आताम्रतामपनयामि ...	रत्नावल्याम्...	२३
आत्मानमालोक्य च ...	कुमारसंभवे...	११३
आदृष्टिप्रसरात्प्रियस्य ...	अमरुशतके ...	६१
आनन्दाय च विस्मयाय ...	वीरचरिते ...	७४
आन्ध्रप्रोतवृहत्कपाल ...	वीरचरिते ...	१३५
आयस्ता कलहं पुरेव ...	[अमरुशतके]	५७
आयाते दयिते मरु ...	[अमरुशतके]	१०३
आलापान्ब्रूविलासो ...	... ..	५५
आशस्त्रग्रहणादकुण्ठपरशो ...	वर्णासंहारे ...	१५
आश्लिष्टभूमिं रसितार ...	माधे ...	१०८
आसादितप्रगटनिर्मल ...	... ..	७९, ८१
आहूतस्याभिषेकाय ...	... ..	४६, ५२
इन्दीवरेण नयनं ...	... ..	१३१
इयं गेहे लक्ष्मीरियममृत...	उत्तरचरिते...	८५
इयं सा लोलाक्षी त्रिभु ...	... ..	११५
उचितः प्रणयो वरं विहन्तुं ...	[मालविकाग्निमित्रे]	४८
उच्छ्वसन्मण्डलप्रान्तरेख ...	मम (धनिकस्य) ...	५४
उज्जृम्भाननमुल्लसत् ...	मम (धनिकस्य) ...	९८
उत्कृत्योत्कृत्य कृत्ति ...	मालतीमाधवे ...	१३५
उत्कृत्योत्कृत्य गर्भानपि ...	वीरचरिते ...	१०४
उत्तालताडकोत्पातदर्शने...	वीरचरिते ...	५१
उत्तिष्ठ दूति यामो यामो...	... ..	६१
उत्पत्तिर्जमदमितः स ...	वीरचरिते ...	४३
उत्सङ्गं वा मलिनवसने ...	मेघदूते ...	१३२
उद्दामोत्कलिकां विपाण्डुर ...	[रत्नावल्याम्]	५
उन्मीलद्वन्द्वेन्दुदीप्ति ...	... ..	६५
उरसि निहितस्तारो हारः...	अमरुशतके...	६२
एकत्रासनसंस्थितिः ...	अमरुशतके...	५७
एकं ध्याननिमीलना ...	... ..	११५
एकेनाक्ष्णा प्रवितत ...	[चन्द्रकस्य]	११६
एकतो रुअइ पिआ ...	... ..	११५
एतां पश्य पुरःस्थली ...	... ..	५१

श्लोकाः ।	कविनाम ग्रन्थनाम वा ।	पृष्ठे ।
एते वयममी दाराः...	[कुमारसंभवे]	५३
एवंवादिनि देवर्षी...	कुमारसंभवे	११२
एवमालि निगृहीतसाध्व...	[कुमारसंभवे]	१०२
एहोहि वत्स रघुनन्दन ...	वीरचरिते ...	१११
औत्सुक्येन कृतत्वरं ...	[रत्नावल्याम्]	८०
कः समुचिताभिषेकादार्थं ...	... ..	११२
कण्ठे कृत्वावशेषं कनक ...	रत्नावल्याम्	७६
कपोले जानक्याः करि ...	[हनुमन्नाटकं]	५१
कर्णदुःशासनवधात् ...	वेणीसंहारे ...	२६
कर्णार्पितो रोध्नकपाय ...	कुमारसंभवे	६८
कर्ता सूतच्छलानां जनुमय ...	वेणीसंहारे ...	८४
कस्त्वं भोः कथयामि ...	... ..	१००
कामं त्वं शुभे कस्य ...	रघौ ...	४४
कान्ते तल्पमुपागते ...	[अमरुशतके]	५७
का श्लाघ्या गुणिनां ...	पाण्डवानन्दे	८२
किं लोभेन विलङ्घितः ...	... ..	११२
किं गतेन न हि युक्त ...	[किरातार्जुनीये]	१३१
किं धरणीए मिश्रद्वौ ...	रत्नावल्याम्	२९
किमपि किमपि मन्दं ...	उत्तररामचरिते	१३३
कुलवालिआए पेच्छह ...	... ..	५३
कृतगुरुमहदादिक्षोभ ...	वेणीसंहारे ...	३६
कृतेऽप्याज्ञाभङ्गे कथमिव ...	मम (धनिकस्य)	१३१
कृशाश्वान्तेवासी जयति ...	वीरचरिते ...	३९
कृष्टा केशेषु भार्या ...	वेणीसंहारे ...	३०
केलीगोत्तकखलणे ...	... ..	१३०
कैलासोद्धारसार ...	[वीरचरिते]	४७, ४८
कोपात्कोमललोलबाहु ...	अमरुशतके ...	५७
कोऽपि सिंहासनस्याधः ...	छलितरामे ...	८३
कोपो यत्र भुक्तिरचना ...	[अमरुशतके]	५८
कोधान्धैर्यस्य मोक्षाक्षत ...	वेणीसंहारे ...	३७
क्वचित्ताम्बूलातः क्वचिद ...	[अमरुशतके]	५७
क्षितो हस्तावलमः प्रसभ ...	अमरुशतके ...	१११
खर्वप्रन्थिविमुक्तसंधि ...	... ..	१३१

श्लोकाः ।	कविनाम ग्रन्थनाम वा ।	पृष्ठे ।
गमनमलसं शून्या ... ..	मालतीमाधवे ... ..	७३
चक्षुर्लुप्तमपीकणं ... ..	... ..	१२५
चक्षुर्दुःखमिति चण्डगदा ... ..	वेणीसंहारे ... ..	११, ३३
चलति कथंचित्पृष्ठा ... ..	मम (धनिकस्य) ... ..	१०९
चाणक्यनाम्ना तेनाथ ... ..	बृहत्कथायाम् ... ..	४२
चित्रवर्तिन्यपि वृषे ... ..	पद्मगुप्तस्य ... ..	६९
चिररतिपरिखेदप्राप्त ... ..	माधे ... ..	१०८
चूर्णिताशेषकौरव्यः ... ..	वेणीसंहारे ... ..	३२
जगति जयिनस्ते ते ... ..	मालतीमाधवे ... ..	१२६
जं किं पि पेच्छमाणं ... ..	मम (धनिकस्य) ... ..	६५
जन्मेन्दोरमले कुले ... ..	वेणीसंहारे ... ..	२८
जातं मे परुषेण भस्म ... ..	... ..	१३७
जीयन्ते जयिनोऽपि सान्द्र ... ..	उदात्तराघवे ... ..	७६
ज्ञातिप्रीतिर्मनसि न कृता ... ..	वेणीसंहारे ... ..	२७
ज्वलन्तु गगने रात्रौ रात्रा ... ..	मालतीमाधवे ... ..	६७
णेरकोडिविलग्नं ... ..	[गाथासप्तशत्याम्] ... ..	१३१
तं वीक्ष्य वेपथुमती ... ..	कुमारसंभवे ... ..	१२८
तं चिअ वअणं ते चैअ ... ..	मम (धनिकस्य) ... ..	६४
तत्त उदयगिरेरिवैक ... ..	मालतीमाधवे ... ..	४५
ततश्चाभिज्ञाय स्फुरद् ... ..	अमरुशतके ... ..	१०५
तथा व्रीडाविधेयापि ... ..	मम (धनिकस्य) ... ..	६६
तदवितथमवादीर्यन्मम ... ..	[माधे] ... ..	७२
तनुत्राणं तनुत्राणं शस्त्रं ... ..	... ..	११०
तवास्मि गीतरागेण ... ..	शाकुन्तले ... ..	८०
तद् ज्ञप्तिं से पअत्ता ... ..	मम (धनिकस्य) ... ..	६५
तद् दिट्ठं तद् भणिअं ... ..	मम (धनिकस्य) ... ..	६७
तां प्राड्मुखीं तत्र निवेश्य ... ..	कुमारसंभवे ... ..	६५
ताव चिअ रइसमए ... ..	[गाथासप्तशत्याम्] ... ..	५५
तावन्तस्ते महात्मानो ... ..	उदात्तराघवे ... ..	१०२
तिष्ठन्भाति पितुः पुरो ... ..	[नागानन्दे] ... ..	४६, ४७
तीर्णे भीष्ममहोदधौ ... ..	वेणीसंहारे ... ..	२५
तीव्रः स्मरसंतापो न ... ..	रत्नावल्याम् ... ..	२१

श्लोकाः ।	कविनाम ग्रन्थनाम वा ।	पृष्ठे ।
तीव्राभिषङ्गप्रभवेन ... ..	कुमारसंभवे ... ..	१०९
तेनोदितं वदति याति ... ..	... ..	६७
त्यक्तवोत्थितः सरभसं ... ..	वेणीसंहारे ... ..	२८
त्रय्यान्नाता यस्तवायं ... ..	वीरचरिते ... ..	४४
त्रस्यन्ती चलशफरी ... ..	माघे ... ..	१०४
त्रैलोक्यैश्वर्यलक्ष्मी ... ..	वीरचरिते (?) ... ..	४७
त्वचं कर्णः शिबिर्मांसं ... ..	... ..	४३
त्वं जीवितं त्वमसि मे ... ..	उत्तरचरिते ... ..	८४
त्वं ब्रह्मवर्चसधरो ... ..	वीरचरिते ... ..	१३६
दाक्षिण्यं नाम बिम्बोष्ठि ... ..	मालविकाग्निमित्रे ... ..	६२
दिअहं खु दुक्खिआए ... ..	[गाथासप्तशत्याम्] ... ..	६६
दीर्घाक्षं शरदिन्दुकान्ति ... ..	मालविकाग्निमित्रे ... ..	१२६
दुःशासनस्य हृदयक्षतजा ... ..	वेणीसंहारे ... ..	१४
दुःहज्जणाणुगओ लजा ... ..	रत्नावल्याम् ... ..	१५
दूराद्वीयो धरणीधराभं ... ..	वीरचरिते ... ..	१०१
दृष्टिं हे प्रतिवेशिनि ... ..	[विज्जकायाः] ... ..	५८
दृष्टिः सालसतां बिभर्ति ... ..	... ..	५४, ६४
दृष्टिस्तृणीकृतजगत्रय ... ..	[उत्तररामचरिते] ... ..	५१
दृष्ट्वाकासनसंस्थिते प्रिय ... ..	अमरुशतके ... ..	५८, ७३
देआ पसिअ णिअन्तसु ... ..	... ..	६६
देव्या मद्वचनायथाभ्युप ... ..	रत्नावल्याम् ... ..	३२
देवे वर्षेयशानपवन ... ..	... ..	११०
देशैरन्तरिता शतैश्च ... ..	अमरुशतके ... ..	१३२
दोर्दण्डाश्वितचन्द्रशेखर ... ..	... ..	१३८
द्रक्ष्यन्ति न विरात्सुप्तं ... ..	वेणीसंहारे ... ..	३१, ८५
द्वीपादन्यस्मादपि ... ..	रत्नावल्याम् ... ..	५८, ७९, ८१
धिग्धिक्शक्रजितं ... ..	[हनुमन्नाटके] ... ..	१००
धृतायुषो यावदहं ... ..	वेणीसंहारे ... ..	२३
न खलु वयममुष्य ... ..	माघे ... ..	५५
न च भेऽवगच्छति यथा ... ..	[माघे] ... ..	६२
न जाने संमुखायाते ... ..	[अमरुशतके] ... ..	५६
नन्वेव राक्षसपतेः स्वलितः ... ..	वीरचरिते ... ..	११३

श्लोकाः ।	कविनाम ग्रन्थनाम वा ।	पृष्ठे ।
न पण्डिताः साहसिका ...	...	१०९
न मध्ये संस्कारं कुसुम ...	...	५४
नवजलधरः सन्नद्धोऽयं ...	[विक्रमोर्वश्याम्] ...	११३
नवनखपदभङ्गं गोप ...	[माघे] ...	६१, १३०
नष्टं वर्षवरैर्मनुष्यगणना ...	रत्नावल्याम् ...	७६, १३८
नान्दीपदानि रतिनाटक ...	...	६९
निःश्वासा वदनं दहन्ति ...	[अमरुशतके] ...	६१
निजपाणिपल्लवतट ...	[माघे] ...	६०
निद्रार्धमीलितदृशो ...	[बिल्हणस्य] ...	१०७
निर्ममेन मयाम्भसि ...	रुद्रस्य ...	१३०
निर्वीणवैरिदहनाः प्रशमा ...	वेणीसंहारे ...	८१
नूनं तेनाद्य वीरेण ...	वेणीसंहारे ...	३०
पक्षमाग्रप्रथिताश्रुविन्दु ...	...	१०४
पञ्चानां मन्यसेऽस्माकं ...	वेणीसंहारे ...	२६
पटालप्रे पत्यौ नमयति ...	अमरुशतके ...	१०८
पणभकुविआण दोहवि ...	[गाथासप्तशत्याम्] ...	१२९
पत्युः शिरश्चन्द्रकलाम ...	[कुमारसंभवे] ...	७२
परिच्युतस्तत्कुचकुम्भ ...	रत्नावल्याम् ...	१७
परिषदियमृषीणामेष ...	वीरचरिते ...	१८
पशुपतिरपि तान्यहनि ...	कुमारसंभवे ...	११३
पादाङ्गुष्ठेन भूर्मे क्विस ...	[अमरुशतके] ...	७०
पित्रोर्विधातुं शुश्रूषां ...	[नागानन्दे] ...	४६
पुण्या ब्राह्मण जातिः ...	[वीरचरिते] ...	४८, ७५
पुरस्तन्व्या गोत्रस्खलन ...	अमरुशतके ...	१०५
पूर्यन्तां सलिलेन रत्न ...	वेणीसंहारे ...	३१
पौलस्त्यपीनभुजसंपदु ...	...	११०
प्रणयकुपितां दृष्ट्वा देवी ...	{ श्रीवाक्पतिराजदेवस्य ...	१२९
...	{ श्रीमुञ्जस्य ...	१३०
प्रणयविशदां दृष्टिं वक्त्रे ...	रत्नावल्याम् ...	२०
प्रथमजनिते बाला मन्यौ ...	...	५४
प्रयत्नपरिवेधिता ...	वेणीसंहारे ...	२२
प्रसीदत्यालोके किमपि ...	मम (धनिकस्य) ...	४८
प्रसीदेति ब्रूयामिदमसति ...	रत्नावल्याम् ...	१७

श्लोकाः ।	कविनाम ग्रन्थनाम वा ।	पृष्ठे ।
प्रहरकमपनीय खं ... ..	माघे ... ..	१०८
प्रहरविरतौ मध्ये... ..	अमरुशतके... ..	१३२
प्राप्ताः श्रियः सकलकाम... ..	[भर्तृहरिशतके] ... ..	१००
प्राप्ता कथमपि दैवात् ... ..	रत्नावल्याम् ... ..	१७
प्राप्य मन्मथरसादति ... ..	माघे ... ..	१०२
प्रायश्चित्तं चरिष्यामि ... ..	वीरचरिते ... ..	४४, ५२, १०५
प्रारब्धां तरुपुत्रकेषु ... ..	... ..	११०
प्रारभ्यते न खलु विघ्न ... ..	भर्तृहरिशतके ... ..	४४
प्रारम्भेऽस्मिन्स्वामिनो ... ..	रत्नावल्याम् ... ..	५, ६, ८
बाले नाथ विमुञ्च... ..	अमरुशतके ... ..	५६
बाहोर्बलं न विदितं... ..	हनुमन्नाटके ... ..	४४
ब्राह्मणातिक्रमत्यागो ... ..	वीरचरिते ... ..	४८, १०६
ब्रूत नूतनकूष्माण्ड ... ..	... ..	५२
भम धम्मिअ बीसद्वो ... ..	[गाथासप्तशत्याम्] ... ..	११८
भिक्षो मांसनिषेवणं ... ..	... ..	१३७
भुक्ता हि मया गिरयः ... ..	... ..	८६
भूमौ क्षिप्त्वा शरीरं ... ..	वेणीसंहारे ... ..	३४
भूयः परिभवह्वान्ति ... ..	वेणीसंहारे ... ..	११
भूयो भूयः सविधनगरी ... ..	मालतीमाधवे ... ..	१२६
भूमङ्गे सहसोद्वता ... ..	[रत्नावल्याम्] ... ..	६७
मखशतपरिपूतं गोत्र ... ..	मृच्छकटिकायाम् ... ..	२९, ४५
मज्झ पट्टणा एसा ... ..	रत्नावल्याम्... ..	३०
मत्तानां कुसुमरसेन ... ..	विक्रमोर्वश्याम्(?) ... ..	८३
मथ्नामि कौरवशतं समरे ... ..	वेणीसंहारे ... ..	१०
मधु द्विरेफः कुसुमैकपात्रे ... ..	कुमारसंभवे... ..	१२५
मध्याह्नं गमय लज्ज श्रम... ..	... ..	७२
मन्थायस्तार्णवाम्भःप्लुत ... ..	वेणीसंहारे ... ..	९
मनोजातिरनाधीना ... ..	विक्रमोर्वश्याम् ... ..	८२
महु एहि किं णिवालअ ... ..	... ..	६३
मा गर्वमुद्गह कपोल ... ..	... ..	६०
मातः कं हृदये निधाय ... ..	... ..	६९
मात्सर्यमुत्सार्य विचार्य ... ..	[भर्तृहरिशतके] ... ..	११५

श्लोकाः ।	कविनाम ग्रन्थनाम वा ।	पृष्ठे ।
मुनिरयमथ वीरस्तादृश...	वीरचरिते ...	१०६
मुहुरूपहसितामिवा ...	माधे ...	१३१
मृगरूपं परित्यज्य ...	उदात्तराघवे ...	११०.
मृगशिशुदृशस्तस्यास्तापं ...	...	६३
भेदश्छेदकृशोदरं लघु ...	शाकुन्तले ...	८७
मैनाकः किमयं रुणद्धि ...	[हनुमन्नाटके] ...	१०६
यत्सत्यव्रतभङ्गभीरुमनसा...	वेणीसंहारे ...	१२
यदि परगुणा न क्षम्यन्ते ...	[महेन्द्रस्य] ...	१०५
यद्ब्रह्मवादिभिरुपासित ...	वीरचरिते ...	१३
यद्यत्प्रयोगविषये ...	मालविकाग्निमित्रे ...	८५
यद्विस्मयस्तिमितमस्तमिता ...	मालतीमाधवे ...	११
यातु यातु किमनेन ...	...	५६
यातो विक्रमबाहुरात्म ...	रत्नावल्याम् ...	३७
यातोऽस्मि पञ्चनयने ...	रत्नावल्याम् ...	३
यान्त्या मुहुर्वलितकन्धर ...	मालतीमाधवे ...	११, १२६
युष्मच्छासनलङ्घना ...	वेणीसंहारे ...	१०५
ये चत्वारो दिनकर ...	[महानाटकात्] ...	४४
येनावृत्य मुखानि साम ...	छलितरामे ...	२७
ये बाहवो न युधि ...	...	१००
योगानन्दयशःशेषे ...	बृहत्कथायाम् ...	४२
रक्षो नाहं न भूतं रिपु ...	वेणीसंहारे ...	३२
रण्डा चण्डा दिक्खिदा ...	कर्पूरमञ्जर्याम् ...	८३
रतिक्रीडाश्रुते कथमपि ...	मम (धनिकस्य) ...	६८
राज्ञो विपद्बन्धुवियोग ...	...	१००
राज्यं निर्जितशत्रु ...	रत्नावल्याम्...	४५, १०२
राम राम नयनाभिराम ...	वीरचरिते ...	४३
रामो मूर्ध्नि निधाय कानन ...	उदात्तराघवे ...	७९
लक्ष्मीपयोधरोत्सङ्ग ...	मम (धनिकस्य) ...	१३५
लघुनि तृणकुटीरे ...	[कमलायुधस्य] ...	१०७
लज्जापञ्चत्तपसाहणाई ...	...	५३
लाक्षागृहानलविषात्र ...	वेणीसंहारे ...	८१, १३६



श्लोकाः ।	कविनाम ग्रन्थनाम वा ।	पृष्ठे ।
लाक्षालक्ष्म ललाटपट्ट ... ..	अमरुशतके ... ..	४९
लालां वक्तासवं वेत्ति ... ..	... ..	१३६
लावण्यकान्तिपरिपूरित ... ..	... ..	११८
लावण्यममथविलास ... ..	मम (धनिकस्य) ... ..	५२
लावण्यामृतवर्षिणि ... ..	मम (धनिकस्य) ... ..	१३४
लीनेव प्रतिबिम्बितेव ... ..	मालतीमाधवे ... ..	१०६
लुलितनयनताराः ... ..	माधवे ... ..	१०१
वत्सस्याभयवारिधेः ... ..	उदात्तराघवे ... ..	१११
वयमिह परितुष्टा ... ..	भर्तृहरिशतके ... ..	१०२
वाताहतं वसनमाकुलमुत्त ... ..	... ..	११०
विनिकषणरणत्कटोर ... ..	... ..	११४
विनिश्चेतुं शक्यो न ... ..	उत्तररामचरिते ... ..	१०९, १३३
विरम विरम वहे मुख ... ..	रत्नावल्याम् ... ..	१११
विरोधो विश्रान्तः प्रसरति ... ..	उत्तरचरिते ... ..	२८
विवृण्वती शैलसुतापि ... ..	कुमारसंभवे ... ..	११८
विस्मज सुन्दरि संगम ... ..	मालविकाग्निमित्रे ... ..	७३
विस्तारी स्तनभार एष ... ..	... ..	५४
वृद्धास्ते न विचारणीय ... ..	उत्तरचरिते ... ..	२७
वृद्धोऽन्धः पतिरेष मन्त्रक ... ..	भोजप्रबंधे ... ..	१०३
वेवइ सेअदवदनी ... ..	... ..	९९
व्यक्तिर्व्यञ्जनधातुना ... ..	[नागानन्दे] ... ..	१२५
व्याहता प्रतिवचो न ... ..	[कुमारसंभवे] ... ..	५४, १२८
शठोऽन्यस्याः काक्षीमणि ... ..	[अमरुशतके] ... ..	४९
शस्त्रप्रयोगखुरलीकलहे ... ..	वीरचरिते ... ..	७४
शस्त्रमेतत्समुत्सृज्य ... ..	... ..	१३८
शस्त्रेषु निष्ठा सहजश्च ... ..	मालतीमाधवे ... ..	६३
शिरामुखैः स्यन्दत एव ... ..	नागानन्दे ... ..	४६, ५३
शीतांशुर्मुखमुत्पले तव ... ..	रत्नावल्याम् ... ..	२१
शोकं स्त्रीवन्नयनसलिलै ... ..	वेणीसंहारे ... ..	३१
श्रीरेषा पाणिरप्यस्याः ... ..	रत्नावल्याम् ... ..	१८
श्रीहर्षो निपुणः कविः ... ..	रत्नावल्याम् ... ..	८०
श्रुताप्सरोगीतिरपि ... ..	कुमारसंभवे ... ..	६४

श्लोकाः ।	कविनाम ग्रन्थनाम वा ।	पृष्ठे ।
श्रुत्वायातं बहिः कान्त ... ..	मम (धनिकस्य) ... ..	६८
श्लाघ्याशेषतनुं सुदर्शन ... ..	... ..	११६
सकलरिपुजयाशा यत्र ... ..	वेणीसंहारे ... ..	३१, ८४
सखि स विजितो वीणा... ..	... ..	६०
सचं जाणइ ददुं सरि ... ..	[गाथासप्तशत्याम्] ... ..	६३
स च्छिन्नबन्धद्रुत ... ..	रघुवंशे ... ..	१११
सततमनिर्वृतमानस ... ..	... ..	७७
सयश्छिन्नशिरःश्वध्र ... ..	उदात्तराघवे ... ..	१०३
सन्तः सच्चरितोदय ... ..	... ..	८७
सन्भङ्गं करकिसल्या ... ..	मम (धनिकस्य) ... ..	७८
समारूढा प्रीतिः प्रणय ... ..	रत्नावल्याम् ... ..	२२
संप्राप्तेऽवधिवसरे ... ..	... ..	१०६
सरसिजमनुविद्धं शैव ... ..	शाकुन्तले ... ..	६६
सव्याजं तिलकालकान्वि ... ..	मम (धनिकस्य) ... ..	६९
सव्याजैः शपथैः प्रियेण ... ..	रत्नावल्याम् ... ..	२८
सहभृत्यगणं सवान्धवं ... ..	वेणीसंहारे ... ..	१४
सद्वसा विदधीत न ... ..	किराते ... ..	१०९
सालोए चिअ सूरि ... ..	[गाथासप्तशत्याम्] ... ..	७२
सुधाबद्धग्रासैरुपवन ... ..	चिद्धशालभञ्जिकायाम् ... ..	१२८
सुभ्रु त्वं नवनीतकल्प ... ..	मम (धनिकस्य) ... ..	१२९
स्तनतटमिदमुचुङ्गं... ..	... ..	५६
स्तनावालोक्य तन्वङ्गयाः ... ..	... ..	१२८
स्तिमितविकसिताना ... ..	मालतीमाधवे ... ..	१२६
स्नाता तिष्ठति कुन्तलेश्वर ... ..	... ..	४९
स्पृष्टस्त्वयैष दयिते ... ..	रत्नावल्याम्... ..	१३४
स्फूर्जद्भ्रजसहस्रनिमित्त ... ..	वीरचरिते ... ..	४३, ५१
स्मरदवधुनिमित्तं गूढ ... ..	मम (धनिकस्य) ... ..	६९
स्मरनवनदीपूरेणोटाः ... ..	[अमरुशतके] ... ..	५५
स्मरसि सुतनु तस्मिन् ... ..	उत्तररामचरिते ... ..	१२५
स्मितज्योत्स्नाभिस्ते ... ..	मम (धनिकस्य) ... ..	१३१
खगेहात्पन्यानं तत ... ..	... ..	१३८
खसुखनिरमिलाषः ... ..	[शाकुन्तले] ... ..	४७

श्लोकाः ।	कविनाम ग्रन्थनाम वा ।	पृष्ठे ।
स्वेदाम्भःकणिकाश्विते ... ..		५६
हंस प्रयच्छ मे कान्तां ... ..	[विक्रमोर्वश्याम्] ... ..	८६
हरस्तु किञ्चित्परिलुप्त ... ..	कुमारसंभवे ... ..	६४
हर्म्याणां हेमशृङ्गश्रियमिव ... ..	रत्नावल्याम् ... ..	२७
हसिअमविआरमुद्धं ... ..		५३
हस्तैरन्तर्निहितवचनै ... ..		१२५
हावहारि हसितं ... ..	माधे ... ..	१०७
हन्मर्मभेदिपतदुत्कटक ... ..	वीरचरिते ... ..	१०७
हेरम्बदन्तमुसलोल्लिखितै ... ..	वीरचरिते ... ..	७५
होन्तपहिअस्स जाआ ... ..	[गाथासप्तशत्याम्] ... ..	१३२
द्विया सर्वस्यासौ हरति ... ..	रत्नावल्याम् ... ..	१०१